ओ३म्

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक धर्म

'वेदप्रकाश का विशेषांक'

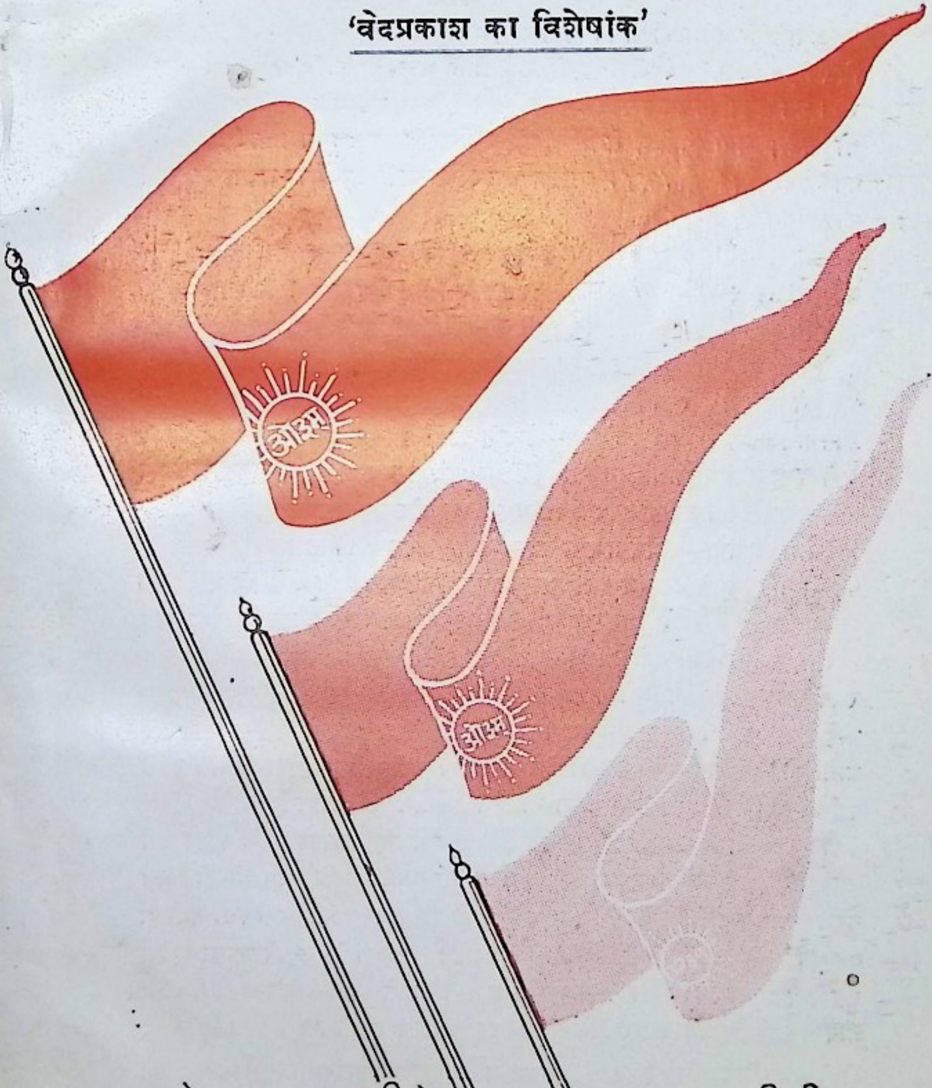

वे० शा० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

'वेदप्रकाश' ॥ मूल्य ० रुपये

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नम्र निवेदन

ब्रह्मा से लेकर दयानन्दसरस्वती-पर्य्यन्त समस्त ऋषि-मुनि एक स्वर में 'वेदों के पढ़ने-पढ़ाने सुनने-सुनाने को परम धर्म' बताते आए हैं। जब तक ऋषियों की इस वेदानुकूल आज्ञा का पालन होता रहा, आर्य सब प्रकार से सम्पन्न, समृद्ध, सर्वत्र विजयी, यशस्वी, वर्चस्वी, तेजस्वी, महोद्योगी, अतुल पराक्रमी, ज्ञानी, ध्यानी बने रहे। जब से इन्होंने इस परमधर्म का परित्याग किया, इसका हनन किया, धर्म इन्हें छोड़ गया; आर्य श्रीहीन, तेजोविहीन, वर्चो-रहित, तपःशून्य, प्रमादी, आलसी बनकर पददलित होने लगे। समस्त संसार में व्यापी आर्यों का अपना कहने को कोई स्थान भी न रहा।

आर्यों के ऐसे भयंकर ह्रास के समय ऋषि दयानन्द का आविर्भाव हुआ। उन्होंने फिर से उस परमपावन धर्म का प्रचार किया। ऋषि से पहले जनसाधारण तो क्या, महाविद्वान् कहलाने वालों की भी अधिक संख्या वेदों के नाम से परिचित न थी। ऋषि दयानन्द सबसे प्रथम सज्जन हैं, जिन्होंने भारतवर्ष में सर्वप्रथम वेदों को मुद्रित करा सर्वसाधारण के लिए उन्हें सुलभ किया। ऋषि ने अपना कार्यभार आर्यों पर डाला, किन्तु दुर्भाग्य से आर्यों ने अपने गुरु की इस आज्ञा की बुरी तरह से अवहेलना की। आप किसी मुसलमान या ईसाई प्रचार-मण्डल को देखिए, उसके सब सदस्य अपने धर्मग्रन्थ को पढ़ और समझ सकते हैं, किन्तु वैदिक धर्म प्रचारक संघ—आर्यसमाज के सदस्य अपने धर्मग्रन्थ को समझना तो दूर रहा, पढ़ भी नहीं सकते। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि अनेक आर्यों के घर में वेद की पुस्तक भी न मिलेगी। इसका परिणाम यह हो रहा है कि ये सदा सिद्धान्त-ज्ञान के लिए परमुखापेक्षी रहते हैं। ऐसे लोगों तथा सर्वसाधारण के लाभ को दृष्टि में रखकर कई सज्जनों ने मुझे आज्ञा की कि मैं कोई ऐसी पुस्तक तैयार करूँ जिससे थोड़े में वैदिक धर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का संग्रह हो। ऐसे महानुभावों की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने 'वेदोपदेश' नामक ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। इसके कई भाग होंगे। इस प्रथम भाग का नाम 'वैदिक धर्म' रखा गया है।

पुस्तक लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि वैदिक धर्म तथा अन्यमतावलम्बी, जनसाधारण तथा पण्डित-समाज सबके काम की हो। अर्थ सरल तथा स्पष्ट भाषा में लिखे गए हैं। व्याख्या अत्यन्त संक्षिप्त लिखी गयी है, वह इस वास्ते कि लोग पढ़कर स्वयं मनन करें। व्याख्या के बहाने अपना सन्देश सुनाने का यत्न नहीं किया गया। कहीं-कहीं विचारों को उत्तेजित करने के लिए आवश्यक निर्देश अवश्य कर दिये हैं। आशा है, पाठक इसे पसन्द करेंगे।

बोधोत्सव (शिवरात्रि) १०५ — श्रोत्रियवृन्दपादारविन्दमकरन्दमिलिन्दसतीर्थ
गुजरात (पंजाब) — श्रीवेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३६, अंक १]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [अगस्त १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

ईश्वर

सत्-चित् आनन्द

१. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ऽ ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥
—यजु० ३२।८॥

(यत्र विश्वं एकनीडं भवति) जिस प्रभु में सारा संसार समानाश्रयवाला होकर रहता है, अर्थात् जो प्रभु ही समस्त संसार का एकमात्र आश्रय है, (वेनः) मेधावी=ज्ञानी मनुष्य (तत्) उस (सत्) सत् स्वरूप (निहितम्) सर्वथा हितकारी भगवान् को (गुहा) हृदय-गुफा में (पश्यत्) साक्षात् करता है (च) और (इदं सर्वं) यह सारा जगत् (तस्मिन्) उसी प्रभु में (सम्+एति) समाता है=प्रलयकाल में लीन होता है (च) और (वि+एति) उत्पन्न होकर भी उसी में रहता है। (सः) वह (विभूः) विभू=व्यापक, नाना विभूतिसम्पन्न परमात्मा (प्रजासु) प्रजाओं में=सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में (ओतः च प्रोतः) ओत और प्रोत है।

इस मन्त्र में परमेश्वर को स्पष्ट सत् कहा गया है। मन्त्र पर विचार करने से स्पष्ट समझ में आ जाता है कि सारे संसार की सत्ता भी प्रभु के सहारे है।

२. प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥
—यजु० ३२।९॥

(गन्धर्वः) वेदवाणी का धारण करनेवाला (विद्वान्) ज्ञानी मनुष्य (नु) ही (तत्) उस परम प्रसिद्ध (सत्) सत्स्वरूप (अमृतं) अविनाशी (गुहा विभृतं) हृदय-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुहा में विशेष रूप से धारित (धाम) तेजस्वी प्रभु का (प्र) उत्तम रीति से (वोचेत्) उपदेश कर सकता है। (अस्य पितुः) इस जगत्पिता की (गुहा हिता) अत्यन्त गुप्त (त्रीणी पदानि) तीन अवस्थाओं (जगत् को उत्पन्न करना, पालन करना तथा नाश करना) को (यः) जो (वेद) जानता है, (सः) वह (पिता) पिता=ज्ञानी (असत्) हो जाता है।

३. ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन्।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः॥
—अ० १८।४।१४॥

जो (ईजानः) यज्ञ करनेवाला, परमात्मपूजा करनेवाला, विद्वानों का आदर करनेवाला, सत्संग करनेवाला मनुष्य (नाकस्य पृष्ठात्) सुख की स्थिति से (दिवं उत्पतिष्यन्) मोक्ष के लिए उद्योग करता हुआ (चितं) चित्=चेतन (अग्नि) परमात्मा को (आरुक्षत्) प्राप्त होता है, (तस्मै सुकृते) उसी सुकृत करनेवाले को (देवयानः) विद्वानों से प्राप्त अथवा विद्वान् जिस मार्ग से जाते हैं ऐसा (नभसः ज्योतिषीमान्) सदा प्रकाशमय द्युलोक से भी अधिक प्रकाशमय (स्वर्-गः) मोक्ष तक ले जानेवाला (पन्थाः) मार्ग (प्रभाति) भली प्रकार सूझता है।

मन्त्र में चितं पद स्पष्ट है। मोक्ष-प्राप्ति का कैसा सुन्दर उपाय बताया है! परमात्मा की प्रेम से पूजा, विद्वानों का सत्संग और सत्कर्म मोक्षदायक हैं।

४. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृळ्हा चिदारुजे वसु॥ —ऋ० ४।३१।२॥

हे ईश्वर! तू (अन्धसः) अन्नादि भोगों के (मदानां) आनन्दों से भी (मंहिष्ठः) अधिक आनन्दकारक और (सत्यः) तीनों कालों में एक-जैसा है, इसलिए (कः) कौन (त्वा) तुझे (मत्सत्) आनन्दित कर सकता है! तू (चित्) चित्=चेतन (दृढा) बलवान् (वसु) सूर्यचन्द्रादि वसुओं को भी (आ रुजे) छिन्न-भिन्न कर देता है।

अन्नादि भोगों से जो आनन्द होता है, उससे अधिक आनन्द प्रभु की प्राप्ति से होता है। प्रभु सदा एक-सा रहता है, उसमें न्यूनता-अधिकता कभी भी नहीं होती, यह सबको आनन्द देता है। वह इतना बलवान् है कि पृथिवी आदि सब पदार्थों को छिन्न-भिन्न कर देता है।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ—

हे मनुष्य! वह (सत्यः) सदा सत्स्वरूप '(चित्) चित्स्वरूप=ज्ञानी (कः) आनन्दस्वरूप (मदानां) आनन्द-हेतुओं में (मंहिष्ठः) सबसे महान् पूजनीय ईश्वर (त्वा) तुझे (अन्धसः) अन्नादि के भोगों से (मत्सत्) आनन्दित करता है और (दृढा वसु) बलकारक धनों को (आरुजे) दुःख-विनाश के लिए देता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस मन्त्र में परमेश्वर को स्पष्ट सत्-चित्-आनन्द=सच्चिदानन्द कहा गया है।

५. परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त॥

—अ० २।१।५॥

(विश्वा भुवनानि) सब भुवनों में (ऋतस्य) सत्य के (विततं) फैले हुए (कं) आनन्ददायक उस (तन्तुं) सूत्र को (दृशे) देखने के लिए (परि+आयम्) सब ओर मैं गया हूँ (यत्र) जिसमें (देवाः) विद्वान् (अमृतं+आनशानाः) मोक्ष का उपभोग करते हुए (समाने योनौ) समान स्थान में (अध्यैरयन्त) पहुँचते हैं।

सारे विश्व के पदार्थों को भली प्रकार जानकर देखा जाए, तो स्पष्ट प्रतीत है कि इनसे जो सुख और आनन्द मिल रहा है, वह सारा-का-सारा जगत्पिता के आनन्द गुण के कारण है। ज्ञानी-ध्यानी-महात्मा इसी कारण सब ओर से चित्तवृत्ति हटाकर उसी में धारणा-ध्यान लगाकर समाधिजन्य परमानन्द को प्राप्त करते हैं।

निराकार

६. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ ऽ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात ऽ इत्येषः॥

—यजु० ३२।३॥

(यस्य) जिसका (महत्) बड़ा (नाम) प्रसिद्ध (यशः) यश है (तस्य) उस परमात्मा की कोई (प्रतिमा) प्रतिमा=मूर्ति=आकार=शक्ल (न अस्ति) नहीं है। (हिरण्यगर्भः इति एष) 'हिरण्यगर्भः' इत्यादि मन्त्रों द्वारा, तथा (मा मा हिंसीत् इति एषा) 'मामा हिंसीत्' इस ऋचा द्वारा (यस्मान्न जात इति एषः) 'यस्मान्न जातः' इन मन्त्रों से उस प्रभु का संकीर्तन होता है।

७. अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥

—ऋ० ८।६९।११॥

(इन्द्रः) अखिलैश्वर्य्यसम्पन्न प्रभु (अपात्) चिह्नरहित=निराकार है (अग्निः) चेतन जीव (अपात्) निराकार है (विश्वे देवाः अमत्सत) सब इन्द्रियाँ या सूर्य-चन्द्र आदि सुख के साधन हैं अथवा आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानकर (विश्वे देवाः अमत्सत) सब विद्वान् मोक्षानन्द पाते हैं। (वरुणः इत् इह क्षयत्) वरुण=सर्वश्रेष्ठ भगवान् ही इस संसार में वास करते हैं, अथवा (वरुणः इह इत् क्षयत्) सर्वश्रेष्ठ भगवान् इसी संसार में=इसी देह में ही रहते हैं। (इव शिश्वरीः वत्सं नम्) जिस प्रकार वर्धक शक्तियाँ बच्चे को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (आपः तम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभि+अनूषत्) सब स्तुतियाँ उसको प्राप्त होती हैं।

ईश्वर और जीव दोनों निराकार हैं, ईश्वर सर्वव्यापक भी है। उसे खोजने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, वह हमारे अन्दर वास करता है। जिस प्रकार अवस्था के कारण वर्धक शक्तियाँ बालक ही को विशेष रूप से बढ़ाती हैं, उसी प्रकार सारी स्तुतियाँ भी परमेश्वर की होती हैं, क्योंकि वही सकलगुण-निधान है।

सर्वशक्तिमान्

८. अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते॥

—ऋ० १।५४।२॥

(यः) जो (वृषा) सुखवर्षणशील (वृषभः) सुख-साधनों का प्रकाशक (वृषत्वा) सुखों की वृष्टि करता रहता है और जो (धृष्णुना) दृढ़तादि गुणयुक्त, (शवसा) बल से (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (न-ऋञ्जते) निरन्तर गति देता है, कार्य-समर्थ बनाता है, (शक्राय) शक्ति-प्राप्ति के लिए तू उसी (शची-वते) परम ज्ञानी (शाकिने) सर्वशक्तिमान् को (अर्च) पूज। (शृण्वन्तं) सदा सबकी सुननेवाले (इन्द्रं) अखण्डैश्वर्ययुक्त प्रभु की (महयन्) सत्कारपूर्वक (अभिष्टुहि) पूर्णरूप से स्तुति कर।

प्रभु सर्वशक्तिमान् है, अतः शक्ति-प्राप्ति के लिए उसी की पूजा करनी चाहिए। पूजा भी सत्कार, श्रद्धा और आदर से करनी चाहिए।

९. शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम्।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत्॥

—अ० १०।८।२४॥

(शतं) सैकड़ों (सहस्रं) हजारों (अयुतं) लाखों (न्यर्बुदं) करोड़ों, अरबों और (असंख्येयं) असंख्यात (स्वं) शक्तियाँ (अस्मिन् निविष्टं) इस ब्रह्म में रहती हैं (तत् अभि पश्यतः) उस परमेश्वर को भली प्रकार साक्षात् करनेवाले (अस्य) इस महात्मा को (घ्नन्ति) ये प्राप्त होती हैं (तस्मात्) उस अनन्त शक्ति से (एषः देवः) यह देव प्रभु (एतत्) इस संसार को (रोचते) प्रकाशित करता है।

परमात्मा की शक्ति की गणना कौन कर सकता है! वह सबसे महान् शक्तिमान् है, उसकी ज्योति से यह सारा जगत् जगमगा रहा है। जो प्रभु का साक्षात् कर लेता है, उसमें भी विलक्षण शक्तियों का उदय होने लगता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न्यायकारी

१०. विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ —ऋ० ८।४३।२४॥

(विशां) प्रजाओं के (अद्भुतं राजानं) अद्भुत राजा (धर्मणां अध्यक्षं) धर्म-कार्यों=न्यायनियमों के योग्य अध्यक्ष अर्थात् कर्मफलप्रदाता (इमं अग्नि) इस तेजस्वी देव की (ईडे) स्तुति करता हूँ (सः) वह (उ) अवश्य (श्रवत्) सुनता है ।

इस मंत्र में परमेश्वर को धर्मों=न्यायनियमों का अध्यक्ष कहा है । धर्म शब्द का अर्थ महाभारत में 'धारणाद्धर्म्ममित्याहुः' कहा है, जिससे सकल संसार का धारण हो सके । अन्याय और पक्षपात से तो संसार की व्यवस्था ही बिगड़ जाती है । परमेश्वर को धर्माध्यक्ष कहकर वेद बताता है कि उसमें अन्याय और पक्षपात का लेश नहीं है ।

११. न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्य्ये दिवि ॥
—ऋ० ७।३२।२१

(मर्त्यः) मनुष्य (दुष्टुती) मन्द और दुष्ट स्तुतियों से (वसु) अभीष्ट धन (न विन्दते) नहीं प्राप्त कर सकता और (न) ना ही (स्रेधन्तं) हिंसक पुरुष को (रयिः) सुखसाधक ऐश्वर्य (नशत्) प्राप्त होता है । (मघवन्) हे सर्वधनस्वामिन् ! (मावते) मेरे समान जन को (पार्ये) इस लोक में और (दिवि) परलोक में (यत्) जो (देष्णं) देने योग्य धन है, उसको (सुशक्तिः इत्) सुकर्मा उद्योगी मनुष्य ही (तुभ्यं) तुझसे प्राप्त कर सकता है ।

केवल भोगविलास के लिए, एवं मारण, मोहन और उच्चाटन आदि पाप-कर्मों के लिए जो स्तुति की जाती है, उसे दुष्टुति=बुरी स्तुति कहते हैं । उससे मनुष्य का कल्याण कभी नहीं हो सकता; ऐसे मनुष्य कोई सुख नहीं पाते । सत्कर्मा धर्म्मात्मा सज्जन ही सुख पाते हैं ।

दयालु

१२. यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
—ऋ० ७।८७।७॥

(यः) जो प्रभु (आगः) अपराध (चक्रुषे) करनेवाले पर (चित्) भी (मृळयाति) दया बनाये रखता है (वरुणे) उस सर्वपूज्य परमात्मा के निकट (वयं अनागाः स्याम) हम अनपराधी होवें=सदा अपराधविहीन होकर रहें (अदितेः) उस अखण्ड

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वव्यापी देव के (व्रतानि अनु) सत्यादि विविध व्रतों के अनुकूल (ऋधन्तः) आचरण करें। हे दयापरायण धर्मात्मा पुरुषो! (यूयं) आप सब (नः) हमको (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (पात) रक्षित करो।

हम नाना अपराध करते हैं, इसपर भी दयामय प्रभु हमें अन्न, जल, वायु, प्रकाश आदि सदा देता रहता है। उसकी इस दयामाया का विचार कर हमें पापाचरण का त्याग कर सदा परमेश्वरीय नियमों के अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिए।

१३. यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥ —ऋ० ५।६४।३॥

(यत्) यदि (मित्रस्य) स्नेहमय=दयालु प्रभु के (पथा) बताए मार्ग से (यायां) जाऊँ, तो (नूनं) अवश्य (गतिं) सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूँ, क्योंकि (अस्य) इस (अहिंसानस्य) हिंसा न करनेवाले अर्थात् दयाभाववाले (प्रियस्य) प्रेम करनेवाले भगवान् के (शर्मणि) कल्याण-मार्ग में विद्वान् (सश्चिरे) आनन्द पाते हैं।

प्रभु जब दण्ड देता है, तब भी दया से प्रेरित होकर प्राणियों के कल्याण के लिए। उसमें हिंसा या प्रतीकार=बदले का भाव नहीं होता। कल्याणाभिलाषी सज्जन प्रभु के बताए मार्ग=वेद का अनुसरण करके इस लोक और परलोक में सुख पाते हैं।

अजन्मा

१४. अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां, मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः॥
—ऋ० १।६७।५॥

(न) जैसे (अजः) न जन्मनेवाला=अजन्मा परमेश्वर (सत्यैः मन्त्रैः) सत्य विचारों से (क्षां) पृथिवी को (दाधार) धारण करता है (पृथिवीं द्यां तस्तम्भ) विस्तृत अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को अथवा सूर्य-चंद्रादि तेजोमय पदार्थों को (तस्तम्भ) गिरने से रोकता है (प्रिया पदानि) प्रीतिकारक=अभीष्ट प्राप्तव्य वस्तुओं को देता है, वह (विश्वायुः) संपूर्ण आयु देनेवाला प्रभु (पश्वः) बन्धन से (निपाहि) नितरां बचाता है। (गुहा) बुद्धि में स्थित हुआ वह (गुहं) गुह्य पदार्थों को (गाः) जानता है, वैसे ही तू भी, हे (अग्ने) ज्ञानिन्! जीवों को अज्ञानादि से छुड़ाकर उन्हें सुख पहुंचा।

जिस प्रकार प्रभु के विचार सत्य होने से दृढ़ होते हैं, उनमें कोई त्रुटि या न्यूनता नहीं होती है, उसी प्रकार जीवों को सत्य विचारों का सम्पादन कर अपना तथा दूसरों का कल्याण साधना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१५. शन्नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शन्नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नो पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥
—ऋ० ७।३५।१३॥

(एकपात्)एकपात्(अजः) अजन्मा परमेश्वर (नः) हमारे लिए (शं) सुखकारी (अस्तु) होवे, (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होनेवाला (अहिः) मेघ (नः शं) हमें सुखदायी हो, (समुद्रः शं) समुद्र कल्याणकारक हो (नपात्) पादरहित होकर (अपां) जलों को (पेरुः) पार करनेवाली नौका आदि (नः शं) हमें सुखदायक हो (देवगोपा) सूर्य्यादि दिव्य पदार्थों की रक्षा करनेवाला (पृश्निः) अन्तरिक्ष (नः शं) हमारे लिए शान्तिदायी हो।

इस मन्त्र में प्रयुक्त 'एकपात्' शब्द एक विशेष निर्देश कर रहा है। 'पादो अस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड मानो प्रभु के एक पाद में समाया है, परमात्मा इससे बहुत बड़ा है। परमात्मा इस जगत् से परे भी है और अपनी महिमा में स्थित है।

अनन्त

१६. अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥
—अ० १०।८।१२॥

(अनन्तं) अनन्त=अन्तरहित ब्रह्म (पुरुत्रा)सर्वत्र(विततं) व्यापक है।(अनन्तं) यह अनन्त ब्रह्म (च) और (अन्तवत्) अन्तवाले=सान्त जीव-प्रकृति (समन्ते) मिले हुए हैं। (ते) इन दोनों को (विचिन्वन्) अलग-अलग समझनेवाला (उत) और (अस्य) इसके (भूतं भव्यं)भूत और भविष्यत् को (विद्वान्)जाननेवाला (नाकपालः) सुख का पालक होकर (चरति) विचरता है।

परमात्मा सर्वव्यापक है, अतः सब में है; जिनमें वह है, वे सुतरां सान्त हैं। इस रीति से सान्त और अनन्त एक-दूसरे में मिले हैं, इनका पृथक्-पृथक् विवेक करनेवाला ज्ञानी मोक्षसुख पाता है।

१७. नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥
—ऋ० ६।२७।३॥

(मघवन्) हे ऐश्वर्यसम्पन्न भगवन् ! (ते समस्य महिमनः) तेरी संपूर्ण महिमा को (नहि विद्म) हम नहीं जानते, और (न) ना ही (मघवत्त्वस्य) तेरे ऐश्वर्य को जानते हैं, और (न) ना ही तेरी (नूतनस्य राधसः राधसः) नित्य नई-नई ऋद्धि-सिद्धियों को जान पाते हैं। (इन्द्र) हे महाशक्तिशालिन् प्रभो ! (ते इन्द्रियं) तेरी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शक्तियों को भी (नकि) कोई नहीं (ददृशे) देखता।

परमात्मा का ऐश्वर्य, उसकी महत्ता, उसकी शक्ति इतनी अचिन्त्य, अप्रतर्क्य और दुर्विज्ञेय-सी हैं कि कोई भी उनका पार नहीं पा सकता।

निर्विकार

१८. इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्य्याय।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद् गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः॥
—ऋ० १०।१११।३॥

(इन्द्रः किल) परमेश्वर ही (अस्य श्रुत्यै) इसके सुनने को (वेद) जानता है अर्थात् भक्तवत्सल भगवान् ही भक्त की प्रार्थना को सुन सकता है। (सः हि) वही (जिष्णुः) जयशील सर्वोत्कृष्ट प्रभु (सूर्य्याय) सूर्य अथवा जीव के लिए (पथिकृत्) मार्ग बनाता है, वह (अच्युतः) च्युत न होनेवाला=निर्विकार परमेश्वर (मेनां) मनन-साधन वेदविद्या को (आत्) सुन्दर रीति से (कृण्वन्) रचता है, और वह (गोः) पृथिवी का तथा (दिवः) द्युलोक का (पतिः) स्वामी (भुवत्) है। (सनजाः) सेवनीय पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ भी वह (अप्रतीत) अलक्ष्य=इन्द्रियागोचर है, अथवा (अ-प्रति-इत) जिसका कोई प्रतिनिधि या तुल्य नहीं है, अर्थात् अनुपम है।

१९. अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥
—अ० १०।८।४४॥

प्रभु (अकामः) निष्काम (धीरः) धैर्यवान्=निर्भय अथवा ज्ञानी (अमृतः)अमर (स्वयंभूः) स्वयं होनेवाला=स्वसत्ता में परनिरपेक्ष=अनादि (रसेन तृप्तः) रस से तृप्त=आनन्दमय और (कुतश्चन) कहीं से भी (ऊनः) न्यून=कम (न) नहीं है अर्थात् उसमें कोई भी विकार नहीं है, सर्वथा निर्विकार है (त एव धीरं अजरं)उसी धीर अजर (युवानं) सदा जवान (आत्मानं) सर्वव्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जाननेवाला (मृत्योः) मृत्यु=जन्म-मरण से (न विभाय) नहीं डरता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

जगद्रचना में परमात्मा का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता, जीवों के कल्याण की कामना से ही वह सृष्टि रचता है। अतः वह निष्काम है। परमात्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। जो प्रभु को जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

अनादि

२०. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे॥ —सा० पू० ५।२।१॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(इन्द्र) अखण्डैश्वर्यसंपन्न परमेश्वर ! (त्वं) तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित है, अथवा किसी का शत्रु नहीं है (अनापिः) बन्धुरहित है (अना) तेरा कोई नेता नहीं है अथवा तेरा कोई नर=सेवक=नौकर नहीं है अर्थात् तू अपने कार्यों में दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं करता (जनुषा सनात् असि) तू जन्म से सनातन है अर्थात् तू जन्म आदि से रहित अनादि है। (युधा) उद्योग से (इत्)ही तू (आपित्वं) बंधुता को (इच्छसे) स्वीकार करता है।

परमेश्वर की किसी से शत्रुता नहीं, और न ही किसी व्यक्तिविशेष से उसकी मैत्री है। जो उद्योग करके सत्कर्मों के अनुष्ठान द्वारा परमेश्वर के गुण-कर्मों को अपने अन्दर धारण करता है, वही परमेश्वर का बन्धु बन जाता है; अपने कार्यों में उसे किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं होती।

२१. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।
वज्रिञ् चित्रं हवामहे ॥ —सा० उ० १।१।२२॥

हे (अपूर्व्य) अनादे परमात्मन् ! (वज्रिन्) पापवारक प्रभो ! (अवस्यवः)रक्षाभिलाषी (वयं) हम (त्वां) तुझ (चित्र) अद्भुत (स्थूरं) अविनाशी की (इत्) ही (हवामहे) कामना करते हैं (न) जिस प्रकार अन्य रक्षा चाहनेवाले लोग (कच्चित्) किसी (स्थूरं) महापुरुष का (भरन्तः) आश्रय लेते हैं।

परमेश्वर ही सबसे बड़ा रक्षक है, उसी का आश्रय लेना उचित है।

अनुपम

२२. न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
—ऋ०७।३२।२३॥

हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् प्रभो ! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्यः) कोई दूसरा (न) न तो (दिव्यः) द्युलोक में है और (न) न ही (पार्थिवः) पृथिवी पर है और न (जातः) न हुआ और (न जनिष्यते) न होगा।(अश्वायन्तः) घोड़ों की इच्छा करते हुए और (गव्यन्तः) गौओं की कामना करते हुए (वाजिनः) ज्ञान और बल से युक्त होकर हम (त्वा हवामहे) तेरी उपासना करते हैं।

परमेश्वर के तुल्य न कोई है, न था और न होगा। अतः सब पदार्थ उसी से माँगने चाहिएँ, किन्तु उससे पहले अपने-आपको अधिकारी भी बना लेना चाहिए।

२३. नकि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ —सा० पू० ३।१।१०

हे (वृत्रहन्) अज्ञाननाशक (इन्द्र) विज्ञानैश्वर्यसंपन्न प्रभो ! (नकि) न तो कोई (त्वत्) तुझसे (उत्तरं) श्रेष्ठ (अस्ति) है (न) न (ज्यायः) ज्येष्ठ है, और (नकि)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और न ही कोई (एवं) ऐसा है (यथा त्वम्) जैसा कि तू।

कैसे सरल और सुन्दर शब्दों में परमेश्वर की अनुपमता का वर्णन है !

सर्वाधार

२४. वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥

—ऋ० १।५९।१॥

हे (अग्ने) सर्वज्ञ प्रभो ! (ते अन्ये अग्नयः) वे दूसरे अग्नि=जीव (त्वे) तेरे अन्दर, तुझपर (वया इत्) शाखाओं अथवा पक्षियों के समान ही हैं अर्थात् आश्रित हैं; वे (विश्वे) सब (अमृताः) मुक्त होकर (त्वे) तेरे आश्रय में (मादयन्ते) आनन्द पाते हैं। (वैश्वानर)हे सर्वनियन्तः ईश्वर ! तू(क्षितीनां नाभिः) सब लोगों का आश्रय है (स्थूण इव) स्तम्भ के समान (जनान्) सब जनता का (उपमित्) समीपस्थ होता हुआ (ययन्थ) नियमन करता है।

परमात्मा सर्वाधार है। सर्वज्ञ और सर्वव्यापक होने से सबका नियमन करता है।

२५. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२१।१॥

(हिरण्यगर्भः) जिसमें अनेक तेजस्वी पदार्थ हैं वह परमात्मा (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (समवर्त्तत) था वह (भूतस्य) भूतमात्र का (एकः पतिः) एक ही स्वामी (जातः आसीत्) प्रसिद्ध है। (सः) वह (पृथिवी) पृथिवी को (उत) और (इमां द्यां) इस द्युलोक को (दाधार) धारण करता है,(कस्मै) उस आनन्दस्वरूप (देवाय) दिव्यगुण-युक्त प्रभु की (हविषा) श्रद्धा-भक्ति से (विधेम) परिचर्या करें।

सर्वेश्वर

२६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।
त्वं राजा जनानाम् ॥ —ऋ० ८।६४।३॥

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यसंपन्न जगदीश्वर ! (त्वं) तू (सुतानां) उत्पन्न पदार्थों का (ईशिषे) ईश्वर है और (त्वं) तू ही (असुतानां) अनुत्पन्न=नित्य जीव तथा प्रकृति का, तथा आगे उत्पन्न होनेवालों का भी ईश्वर है। (त्वं जनानां राजा) तू ही लोकों का राजा है।

परमात्मा ही सर्वेश्वर है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२७. इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ।।

—ऋ० १०।८९।१०

(इन्द्रः इत् दिवः ईशे) परमेश्वर ही द्युलोक का स्वामी है। (इन्द्रः पृथिव्याः) परमेश्वर ही पृथिवी का, (इन्द्रः अपाम्) परमेश्वर ही जलों का (इन्द्रः पर्वतानाम्) परमेश्वर ही पर्वतों अथवा मेघों का (इन्द्रः वृधां) परमेश्वर ही वृद्धिशीलों का (इन्द्रः इत् मेधिराणां) परमेश्वर ही मेधावियों अथवा मिलकर कार्य करनेवालों का स्वामी है; (क्षेमे इन्द्रः हव्यः) क्षेम में परमेश्वर को स्मरण करना चाहिए और (योगे इन्द्रः) योग में भी परमात्मा को स्मरण करना चाहिए ।

प्रत्येक पदार्थ का स्वामी परमेश्वर है। 'पंचों में परमेश्वर' इस लोकोक्ति का मूल (इन्द्रः इत्मेधिराणाम्) प्रतीत होता है ।

सर्वव्यापक

२८. यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।।

—अ० ७।८७।१।।

(यः रुद्रः अग्नौ) जो रुद्र=परमेश्वर अग्नि में (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के बीच में, और जो (ओषधीः वीरुधः आविवेश) ओषधियों और वनस्पतियों में व्यापक है (यः इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे) जो इन सब भुवनों को रचता है (तस्मै अग्नये रुद्राय) उस अग्निरूप रुद्र भगवान् को हम सबका (नमो अस्तु) नमस्कार हो।

जल-स्थल सर्वत्र प्रभु व्यापक है ।

२९. सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ।।

—ऋ० १०।३६।१४।।

(सविता पश्चात्तात्) सर्वोत्पादक प्रभु पीछे की ओर और वही (सविता पुरस्तात्) सविता सामने, वही (सविता उत्तरात्तात्) सविता उत्तर में, वही (सविता अधरात्तात्) सविता नीचे भी है। (सविता) सविता (नः) हमें (सर्वतातिं) सब इष्ट पदार्थ (सुवतु) देता है और वही (सविता) कर्मफल-प्रदाता परेश (नः) हमको (दीर्घ आयुः) दीर्घ आयु (रासताम्) देता है।

सविता शब्द के अर्थ सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, सर्वेश्वर आदि हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ परमेश्वर न हो ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वान्तर्यामी

३०. न तं विदाथ य इमा जजानाऽन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाऽसुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥
—ऋ० १०।८२।७॥

(तं न विदाथ) उसको तुम नहीं जानते (यः इमाः जजान) जो इन सब को उत्पन्न करता है। (युष्माकं अन्तरं अन्यत् बभूव) तुम्हारा अन्तर्यामी तुमसे भिन्न है किन्तु मनुष्य (नीहारेण प्रावृताः जल्प्याः) अज्ञान से ढके होने के कारण वृथा जल्प करते हैं (च) और (उक्थशासः) वातूनी=बकवादी [अपने-आपको ब्रह्म मानने-वाले] (असुतृपः चरन्ति) प्राणमात्र की तृप्ति में लगे रहते हैं।

मनुष्य अज्ञान के कारण अपने अन्दर विराजमान अन्तर्यामी भगवान् को नहीं जान पाते। उस अज्ञान के कारण कई इन्द्रियलोलुप अपने-आपको ब्रह्म मान बैठते हैं। इन 'अहं ब्रह्म'-वादी सज्जनों के लिए मन्त्र में पड़ा 'अन्यत्' पद सर्वथा विचार-णीय है। वेद स्पष्ट शब्दों में अन्तर्यामी परमात्मा को जीव से भिन्न बतला रहा है।

३१. प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश॥
—ऋ० ८।१०१।१४॥

(ह तिस्राः प्रजाः) सचमुच तीन उत्पादक=एक कर्त्ता परमात्मा, दूसरा जीव, तीसरा प्रकृतिरूपी उपादान (अत्यायं ईयुः) अज्ञेयता को प्राप्त हो रहे हैं (अन्याः अर्कं अभितः नि विविश्रे) दूसरे [जीव, प्रकृति तथा विकृति] पूजनीय परमेश्वर में निर्विष्ट हैं। (बृहत् भुवनेषु अन्तः तस्थौ)इन सब में गुणों से श्रेष्ठ प्रभु लोकों के भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है और वह (पवमानः) सकल संसार का पवित्रकर्त्ता भगवान् (हरितः) सब दिशाओं-उपदिशाओं में (आविवेश) व्याप्त है।

अजर

३२. भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः॥
—ऋ० ६।४९।१०॥

(आभिः गीर्भिः) इन वचनों से (दिवा भुवनस्य पितरं रुद्रं वर्धय)दिन में जगत्-पिता रुद्र भगवान् की बड़ाई कर, और (अक्तौ रुद्रं) रात्रि में उसी रुद्र की बड़ाई कर।(कविनां इषितासः) ज्ञान से प्रेरित हुए हम (बृहन्तं) महान् (ऋष्वं) श्रेष्ठ ज्ञानी (सुषम्नं)अत्यन्त उत्तम विचारशील देव (अजरं)अजर परमात्मा की(ऋधक्) विशेष रूप से (हुवेम) उपासना करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रातः-सायं अजर, ज्ञानी, मंगलमय भगवान् की उपासना करनी चाहिए।

३३. इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
अषाढेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि॥

—ऋ० ६।१९।२॥

(यः) जो (धिषणा) बुद्धि या कर्म से (सातये) सत्कार के लिए, पूजा के लिए (बृहन्तं) सर्वमहान् (युवानं) सदा जवान (ऋष्वं) पूर्णज्ञानी (अषाढेन शवसा शूशुवांसं) असह्य बल से युक्त, सर्वत्रव्याप्त (अजरं)अजर=जरारहित (इन्द्रं) सर्वैश्वर्य-सम्पन्न भगवान् को (धात्) हृदय में धारण करता है (सः) वह (सद्यः) शीघ्र (असामि) अत्यन्त (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त करता है।

परमेश्वर कभी भी वृद्ध नहीं होता, वह सदा युवा=जवान=स्वकार्य करने में समर्थ रहता है। ज्ञान और कर्म के द्वारा उसकी भक्ति-पूजा करके वृद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

अमर

३४. तमध्वरेष्वीळते देवं मर्त्ता अमर्त्यम्।
यजिष्ठं मानुषे जने॥ —ऋ० ५।१४।२॥

(मर्त्ताः) मनुष्य (मानुषे जने) हरएक मनुष्य के अन्दर वर्त्तमान (तं यजिष्ठं) उस पूजनीय (अमर्त्यं देवं) अमर देव की (अध्वरेषु) सत्कर्मों के समय (ईलते)स्तुति करते हैं।

जगत्पति प्रभु सब मनुष्यों के अन्तःकरण में विराजमान हैं। वही पूज्य, उपास्य अमर और स्तुत्य देव हैं। सम्पूर्ण सत्कर्म करने के समय श्रेष्ठ मनुष्य उसी की प्रशंसा करते हैं।

३५. स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात्।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद् भूदतिथिर्जातवेदाः॥

—ऋ० ६।४।२॥

(यः) जो (वस्तोः) दिन (चक्षणिः) प्रकाशक सूर्य और (अग्निः न) अग्नि के समान (विभावा) विशेष प्रकाशवाला (विश्वायुः) सम्पूर्ण संसार को ज्ञान तथा आयु देनेवाला (उषर्भुत्) उषाकाल में बोध्य=उपास्य (अतिथिः) सदा ज्ञानी (जातवेदाः) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान (मर्त्येषु अमृतः) विनाशी पदार्थों में अमर=अविनाशी (नः) हमको (वन्दारु) प्रशंसनीय (चनः) अन्नादि पदार्थ (धात्) देता है, (सः) वह (वेद्यः) जानने, विचारने, प्राप्त करने योग्य (भूत्) है।

प्रभु का प्रकाश अनुपम है, सूर्यादि पदार्थों के साथ उपमा केवल समझाने के लिए दी जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभय

३६. स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः॥ —अ० १।२१।१॥

(स्वस्तिदाः) कल्याण देनेवाला (विशां पतिः) प्रजापति (वृत्रहा) अज्ञान-निवारक, पापनाशक (विमृधः वशी) दुष्टों=हिंसकों को वश में रखनेवाला (वृषा) सुख की वृष्टि करनेवाला, शक्तिशाली (सोमपाः) संसार-रक्षक (अभयङ्करः) निर्भय करनेवाला, किसी से भय न करनेवाला=निर्भय=अभय (इन्द्रः) सकल सामर्थ्य-सम्पन्न प्रभु (नः पुर एतु) हमारे समक्ष रहे।

अर्थात् हम उसे कभी भी न भुलाएँ, सदा स्मरण रखें।

३७. अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः॥
—ऋ० २।२७।१४॥

हे (अदिते) निर्विकार! (मित्र) दयालो (उत) और (वरुण) सर्वश्रेष्ठ न्यायकारिन् प्रभो! (वयं वः यत् कच्चित् आगः चकृम) हमने आपका जो कोई पाप [आज्ञोल्लंघन रूप) किया हो उसकी (मृड) शुद्धि कर दे। हे (इन्द्र) अविद्यान्धकार-विनाशक विभो! (अभयं उरु ज्योतिः अश्याम्) तुझ अभय महान् प्रकाशस्वरूप को हम प्राप्त करें जिससे (दीर्घाः) दीर्घ (तमिस्राः) अन्धकार, अज्ञान, अथवा व्याकुलतामयी रात्रियाँ (नः) हमें (मा) न (अभिनशन्) प्राप्त हों।

प्रभु में कोई विकार नहीं, अतएव परम न्यायकारी है। उसका दण्ड हमारे कल्याण के निमित्त होता है, अतः उसकी दया में भी कोई सन्देह नहीं। प्राकृत प्रकाश से कदाचित् हानि की भी सम्भावना है, किन्तु प्रभु का महान् प्रकाश तो भय-नाशक है। अतः यत्नपूर्वक प्रभु-प्रकाश प्राप्त करना चाहिए, जिससे सब प्रकार के दुःख-दारिद्र्य, अविद्यान्धकार आदि अमंगल दूर हों।

नित्य

३८. भोग्योऽभवदथो अन्नमदद् बहु।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम्॥ —अ० १०।८।२२॥

(यः उत्तरावन्तं सनातनं देवं उपासातै) जो अनेक उत्तमगुणयुक्त सनातन=नित्य देव की उपासना करता है, वह (भोग्यः अभवत्) वह भाग्यशील है, और परमात्मा की दया से (वह अन्नं अदत्) अनेक भोग्य प्राप्त करता है।

प्रभु की उपासना से सब-कुछ मिलता है।

३९. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता॥
—ऋ० १०।५५।६॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परमात्मा (शाक्मना शाकः) शक्तिसम्पन्न होने से सर्वसमर्थ (अरुणः) सबको गति देनेवाला (सुपर्णः) शोभन ज्ञानवान् अथवा श्रेष्ठपालक (शूरः) दुष्टों का दलन-कर्त्ता (महः) पूजनीय (सनात्) सनातन=नित्य (अनीलः) किसी विशेष स्थान में न रहता हुआ भी (आ) सर्वत्र व्यापक है, वह (यत् चिकेत) जो कुछ जानता है अथवा करना चाहता है वह (सत्यम् इत्) सत्य ही होता है। (तत् न मोघं) वह विफल या झूठ नहीं होता। (उत) और उसका (वसु) धन (स्पार्ह) चाहने योग्य होता है, वह (जेता उत दाता) सबको वश में रखनेवाला और सबको यथायोग्य देनेवाला है।

सर्वशक्तिमान्, जगत्पालक, दुष्टदलनकर्त्ता, सनातन प्रभु का कोई विचार मिथ्या नहीं हो सकता। उसका ज्ञान सदा सत्य होता है।

पवित्र

४०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु॥ —ऋ० ८।९५।७॥

(एत उ) सब लोग आओ! हम सब (शुद्धेन साम्ना) पवित्र साम से (शुद्धं इन्द्रं नु स्तवाम) पवित्र इन्द्र=परमात्मा की ही स्तुति करें और (शुद्धैः उक्थैः) शुद्ध वचनों अथवा मन्त्रों द्वारा (वावृध्वांसं) दोषरहित भगवान् की स्तुति करें (शुद्धः आशीर्वान् ममत्तु) वह पवित्र तथा आश्रयदाता सबको सुख देता है।

परमेश्वर सर्वथा दोषरहित और पवित्र है, पवित्र वेदमन्त्रों से उसकी स्तुति करके सुख-शान्ति प्राप्त करनी चाहिए।

४१. विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः।
पुनानस्य प्रभूवसोः॥ —ऋ० ९।३५।६॥

(यस्य) जिस (प्रभूवसोः) प्रभूत ऐश्वर्य्यसम्पन्न (धर्म्मणः पतेः) धर्म्म=नियम-पालक अथवा न्यायकारी (पुनानस्य) पवित्र प्रभु के (व्रते)=व्रत=नियम में (विश्वः जनः) सारा संसार (दाधार) अपनी सत्ता धारण कर रहा है, उस परम पवित्र की पुनीत भक्ति से अपने मन, वाक्, कार्य को पवित्र करना चाहिए।

सृष्टिकर्त्ता

४२. य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्॥
—ऋ० १०।११०।९।

(यः इमे द्यावापृथिवी जनित्री) जो इस द्युलोक और पृथिवी लोक को उत्पन्न करता है और (विश्वा भुवनानि रूपैरपिंशत्) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को तत्तद्रूप से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

युक्त करता है, हे (होतः) होता ! (अद्य) आज तू (विद्वान्) इस रहस्य को जानता हुआ (इषितः) विज्ञानयुक्त होकर, सदिच्छा से प्रेरित होकर (यजीयान्) अत्यन्त यजनशील होता हुआ (तं त्वष्टारं देवं) उस सृष्टिकर्त्ता देव की (इह) इस स्थान में, इसी जन्म में (आ यक्षि) भली प्रकार पूजा कर।

मनुष्य को लोक-लोकान्तरों की रचना का विवेचन कर इनके रचयिता की खोज करनी चाहिए। उसका ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त उत्सुकता तथा भक्ति से निरन्तर उसकी पूजा करनी चाहिए।

इस मन्त्र में आए हुए 'रूपैः रपिंशद्भुवनानि विश्वा' (सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को तत्तद्रूप से युक्त करता है) शब्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इन शब्दों का यह अभिप्राय है कि रचना की सामग्री=उपादान कारण पहले से विद्यमान थी, परमात्मा ने उसको एक विशेषरूप=शक्ल दे दी। अभाव से सृष्टि नहीं बनाई।

४३. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥ —ऋ० १।४।१॥

(गोदुहे सुदुघां इव) गौ का दूध दोहते समय उत्तम दूध देनेवाली गौ की जैसे इच्छा की जाती है, उसी प्रकार (ऊतये) अपनी रक्षा करने के लिए, ज्ञानप्राप्ति के निमित्त, अभीष्ट साधन के लिए (द्यवि द्यवि) दिन-प्रतिदिन (सुरूपकृत्नुम्) उत्तम रूप बनानेवाले=सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की हम (जुहूमसि) कामना करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

परमेश्वर इस जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों को सुन्दर रूप देता है। वह सबकी रक्षा करता है, सबका पालन करता है। अतः अपनी रक्षा करने के लिए, ज्ञानप्राप्ति के लिए, एवं अपनी अवस्था उत्तम बनाने के लिए हरएक मनुष्य को प्रतिदिन उसकी प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

इस मन्त्र में 'सुरूपकृत्नुम्' पद विचारने योग्य है। परमेश्वर पदार्थों को रूप देते हैं, अर्थात् पदार्थों के घटक, अवयव पहले से विद्यमान हैं, प्रभु उनका संयोग-विशेष करके जीवों की आवश्यकतानुसार विशेष रूप=शक्ल प्रदान करते हैं।

सृष्टिसंहर्त्ता

४४. तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।
पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद्विजभाराधि नाके॥
—अथर्व० १०।७।४३॥

(अहं) मैं (वि) विशेष (न) नहीं (जानामि) जानता कि (परिनृत्यन्त्योः इव) नाचनेवाली दो स्त्रियों के समान (तयोः) उन दोनों—दिन-रात, सृष्टि-प्रलय—में से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(यतरा) जौन-सी (परास्तात्) पहली या परली है। (पुमान्) सर्वशक्तिमान् पूर्ण-पुरुष ही (एतत्) इस विरूप जगत् के ताने को (वयति) बुनता है, अर्थात् बनाता है, (पुमान्) सर्वसामर्थ्यनिधान भगवान् ही इसको (उद्गृणत्ति) निगलता है, वही परम पुरुष (एनत्) इसको (नाके अधि) प्रजा के निमित्त (विजभार) विशेष रूप से फैलाता है।

सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता तथा संहर्त्ता सर्वशक्तिमान् भगवान् के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? प्रसंग से इस मन्त्र में सृष्टि का प्रयोजन भी बतला दिया। इस सृष्टि को परमात्मा जीवों के कल्याण के लिए रचता है। इन भाव को लेकर योगाचार्य महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में 'भोगापवर्गार्थं' (दृश्य जगत् जीव की भुक्ति तथा मुक्ति के लिए बना है) वचन लिखा। वेद में 'नाक' (दुःखाभाव अर्थात् निश्चय से आनन्द) शब्द का प्रयोग किया है, जिससे यह सूचित करना अभिप्रेत है कि विधाता की सृष्टिरचना तो सर्वथा दुःखाभाव के लिए है, किन्तु प्राणिवर्ग अपनी मूर्खता के कारण इस संसार को दुःखधाम बना लेते हैं। प्रत्येक प्राणी को उचित है कि वह इस रहस्य को समझकर अपने आचरण इस प्रकार के बनाए, जिससे यह जगत् उसके लिए तथा उसके सम्पर्क में आनेवालों के लिए आनन्द का साधन बन जाए।

कर्म्मफलप्रदाता

४५. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक्॥
—अ० १६।५।१॥

(इन्द्रः) अखण्डैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (जगतः) जगत् का (चर्षणीनां) प्राणियों का और (क्षमि अधि) लोक में (यद्) जो(वि-सु-रूपं) विविध प्रकार के सुन्दर रूप-रूपान्तरवाले पदार्थ अथवा विषम रूपोंवाला पदार्थसमूह (अस्ति) है, उस सबका (राजा) राजा=प्रकाशक है।(ततः) उस विषुरूप पदार्थ से वह प्रभु (दाशुषे) दाता मनुष्य को (वसूनि) धनादि (ददाति) देता है (चित्) यदि (अर्वाक्) पहले वह (राधः) धन का (चोदत्) प्रेरणा करनेवाला (उप-स्तुतः) समीपता पाकर स्तुत हो चुका हो तो।

चेतनाचेतनात्मक, स्थावर-जंगम जो यह सृष्टि दृष्टिगोचर होती है, इसका एकमात्र प्रकाशक परम प्रभु परमेश्वर है। वह अपने इस अपार भण्डार से प्राणियों को धनादि उपभोग की समग्र सामग्री प्रदान करता है। किन्तु कब? जब प्राणियों ने उसके लिए पहले उसकी स्तुति की हो। प्रभु के गुण वर्णन करना तथा तदनुसार आचरण करना उसकी स्तुति है। अर्थात् जब तक हम कर्म नहीं करते, तब तक हमें कुछ नहीं मिल सकता। हमारे कर्म करने पर अर्थात् उपस्तुत होने पर हमारे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर्मों के अनुरूप ही हमें धनादि फल प्रदान करता है, अतः मनुष्यों को उचित है कि वे विशेष यत्न द्वारा सत्कर्मों का अनुष्ठान करके उत्तम फल प्राप्त करें; दुर्विचार, दुराचार से सदा बचते रहें।

उपास्य

४६. त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥

—ऋ० २।१।४॥

हे (देव) दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मदेव ! (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! (त्वं) तू ही (वरुणः) श्रेष्ठ अन्तर्यामी (राजा) प्रकाशमान, सकलजगत्प्रकाशक राजा है। तू ही (धृतव्रतः) नियमों का धारण करनेवाला है। (त्वं) तू ही (दस्मः) दर्शनीय (मित्रः) स्नेही, दयालु (ईड्यः) स्तुत्य=उपास्य=पूजनीय (भवसि) है। (त्वं) तू ही (सत्पतिः) सज्जनपालक, प्रत्येक पदार्थ का स्वामी (अर्यमा) न्यायकारी है (यस्य) जिसका (संभुजं) दान सर्वत्र है। (त्वं) तू (अंशः) यथायोग्य विभाजक प्रभु (विदथे) यज्ञादि से (भाजयुः) पूजनीय होता है।

परमात्मा की देव, मित्र, अर्यमा, अंशः आदि विविध नामों से स्तुति की जाती है। वही यज्ञादि सत्कार्यों में पूज्य है।

४७. त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्त्तः सचसे पुरन्ध्या॥

—ऋ० २।१।३॥

हे (अग्ने) तेजस्विन् परमेश्वर ! (त्वं) तू (सतां इन्द्रः वृषभः) तू सज्जनों के दुःखों का नाशक तथा उनपर सुखों की वृष्टि करनेवाला है। (त्वं उरुगायः) तू अत्यन्त स्तुत्य (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य और (विष्णुः) व्यापक है। (ब्रह्मणः पते) ज्ञानपते ! वेदरक्षक ! (त्वं) तू (विधर्त्तः) धाता है और (पुरन्ध्या सचसे) बुद्धि से युक्त रहता है अर्थात् सदा ज्ञानी है, अथवा तू बुद्धि से प्राप्त होता है।

ईश्वर रुद्र, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मणस्पति, धाता और विधाता है। वह सदा सबका उपास्य है।

एक

४८. दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
सं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥

—अ० २।२।१॥

(यः) जो (दिव्यः गन्धर्वः) अर्थात् अद्भुत भुवनों का धारण करनेवाला है, जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(भुवनस्य एकः एव पतिः) भुवनों का एक ही स्वामी है, वही (विक्षु) प्रजाओं में (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य है और (ईड्यः) प्रशंसा=स्तुति करने योग्य है। हे (दिव्य देव) अद्‌भुत परमेश्वर !(तं त्वा) उस तुझको मैं (ब्रह्मणा) वेद द्वारा(यौमि) प्राप्त होता हूँ।(नमस्ते अस्तु) तुझे नमस्कार हो।(ते) तेरा (सधस्थं) वास (दिवि) तेरे अपने प्रकाश में है।

सम्पूर्ण संसार का अधिष्ठाता परमात्मा है, और वह एक ही है। वही नमस्कार करने और प्रशंसा करने योग्य है। वेदज्ञान द्वारा उसको प्राप्त कर सकते हैं।

४९. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥
—ऋ० १०।८१।३॥

(विश्वतः चक्षुः) जिसकी आँख सब ओर हैं (उत) और (विश्वतः-मुखः) सब ओर जिसका मुख है (विश्वतः-बाहुः) जिसके बाहु सब दिशाओं में कार्य कर रहे हैं (उत) और (विश्वतः-पात्) सर्वत्र जिसके पाँव हैं, वह (बाहुभ्यां) पुण्यरूप बाहुओं के द्वारा (पतत्रैः) प्राप्त करने योग्य फलों से (सं धमति) जीवों को गति देता है, और (बाहुभ्यां) आकर्षण-विकर्षणरूप वाहक शक्तियों के द्वारा (पतत्रैः) गतिशील परमाणुओं से (द्यावाभूमी) प्रकाशमय और अप्रकाश लोकों को (जनयत्) रचता है। वह (देवः) प्रभु (एकः) एक है।

सृष्टि का उत्पादक, पालक, संहारक प्रभु एक ही है। उसकी शक्तियाँ सर्वत्र हैं। वह सर्वज्ञ है। वही सबको कर्मानुसार यथायोग्य फल देता है।

अनेक नाम

५०. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
—ऋ० १।१६४।४६॥

(एकं सत्) एक होते हुए भी उसको (विप्राः) विद्वान् लोग (बहुधा) अनेक प्रकार से (वदन्ति) कहते हैं। उसे (अग्नि) अग्नि (यमं) यम (मातरिश्वानं) मातरिश्वा (आहुः) कहते हैं। उस (अग्नि) ज्ञानस्वरूप को (इद्रं मित्रं वरुणं आहुः) इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं (अथो) और (सः) वह (दिव्यः) दिव्य (सुपर्ण) सम्यग्ज्ञानवान्, उत्कृष्टपालनशक्तिमान् और (गरुत्मान्) गौरवयुक्त है।

कितना स्पष्ट मन्त्र है ! जो कहते हैं कि वेद में अनेक देवताओं की उपासना का विधान है, वे इस तथा अगले मन्त्र को देखें। वेद में उपासना प्रकरण में अग्नि, वायु, विष्णु आदि शब्दों का अभिधेय अद्वितीय प्रभु है, यह इस मन्त्र का तात्पर्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५१. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता ऽ आपः स प्रजापतिः ॥ —यजु० ३२।१॥

(तत् एव) वही पूर्ण पुरुष (अग्निः) अग्नि नामवाला है, (तत् आदित्यः) वही आदित्य नामवाला, (तत् वायुः) वही वायु और (तत् उ चन्द्रमाः) वही चन्द्रमा (तत् एव शुक्रं) वही शुक्र (तद् ब्रह्म) वही ब्रह्म (ता आपः) वही आप (सः प्रजापतिः) वही प्रजापति है ।

यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में "पुरुष"=पूर्ण परमात्मा का वर्णन करने के पश्चात् इस मन्त्र में बताया है कि उसी परमात्मा के अग्नि आदि नाम हैं । ये सब गुणवाची नाम हैं ।

पिता

५२. त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥
—ऋ० १।३१।१०॥

हे (अग्ने) तेजस्विन् परमात्मन् ! (त्वं) तू (प्रमतिः) उत्तम ज्ञानवाला है और (नः) हमारा (पिता असि) पिता है । और तू ही (वयः कृत्) जीवनदाता, कमनीय पदार्थ-निर्माता है । (वयं) हम (तव) तेरे (जामयः) बालक हैं । हे (अदाभ्य) न दबनेवाले प्रभो ! यह (शतिनः सहस्रिणः) सैंकड़ों हजारों (रायः) ऐश्वर्य (त्वा) तुझ (सुवीरं=सु-वि-ईरं) विशेष उत्तम प्रेरणा करनेवाले (व्रतपां) नियम पालनेवाले को ही (सं यन्ति) प्राप्त हैं ।

ईश्वर ही सबको सुमति देते हैं, वे हम सबके पिता हैं, अतः वही जीवनदाता है । जिस प्रकार पिता अपनी सन्तान की हितकामना से सदा उत्तम प्रेरणा करता रहता है, तद्वत् प्रभु सदा हमें सत्प्रेरणा करते रहते हैं । अनन्त सुबुद्धि, विपुलशक्ति-सम्पन्न होंने तथा अपने नियमों को सदा अखण्ड रखने के कारण यह इस सारे ऐश्वर्य का स्वामी है । ऐश्वर्याभिलाषी को अतुलबुद्धि, बिपुलशक्ति, तथा अखण्डनीय नियमाचरण का सम्पादन करना चाहिए ।

५३. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥
—ऋ० ७।३२।१९॥

हे जगत्पितः प्रभो ! आपका भक्त (कुहचिद् वेद) कहीं भी विद्यमान हो, मैं आपकी कृपा से उस (दिवे दिवे) प्रतिदिन (महयते) आपकी पूजा करनेवाले भक्त को (रायः) विविध सुखोपभोगसामग्री (शिक्षेयं इत्) दूं ही । हे (मघवन्) निखिल-धनस्वामिन् !(त्वत् अन्यत्) तेरे अतिरिक्त हमें कुछ भी (आप्यं नहि) प्राप्तव्य नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है और आपसे अतिरिक्त (वस्यः) पूजनीय (पिता चन) पिता भी नहीं है।

प्रभुभक्त ही प्रभुप्राप्ति का उपाय बता सकते हैं, अतः प्रभुभक्तों की सदा प्रीतिपूर्वक सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिए। मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है प्रभुप्राप्ति, अतः उसके लिए सतत उद्योग करना चाहिए। परमेश्वर हमें मोक्षसाधक शरीर प्रदान करते हैं। मोक्षसाधन वेदज्ञान प्रदान करते हैं, सदा हमारा पालन करते हैं, तो उनसे बढ़कर और कौन हमारा पूज्यपिता हो सकता है!

ईसाई इस बात पर बड़ा गर्व करते हैं कि उनके धर्मग्रन्थ में ईश्वर को पिता कहा गया है। वेद में तो उससे पहले इस भाव का उपदेश है। इतना ही नहीं, पिता की अपेक्षा 'माता' का भाव कहीं उत्कृष्ट है। वैदिक धर्म के सिवा अन्यत्र कहीं भी इस भाव का पता नहीं चलता। देखिए, कितने सुन्दर शब्दों में वेद ने प्रभु को 'माता' कहा है—

माता

५४. त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वां त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्॥

—ऋ० ६।१।५

हे प्रभो! (क्षितयः) मनुष्य (पृथिव्यां) पृथिवी में=संसार में (त्वां) तेरी (वर्धन्ति) बड़ाई करते हैं=महिमा का विस्तार करते हैं। (जनानाम्) प्राणियों के (उभयासः) दोनों प्रकार के=इस लोक और परलोक के अथवा शारीरिक तथा आत्मिक (रायः) धन भी (त्वां) तेरी महिमा का बखान करते हैं। (त्वं) तू ही (त्राता) तारक=भवसागर से पार उतारनेवाला (भूः) है, और (तरणे) भवसागर से, दुःख-क्लेश-अज्ञान से बचने के लिए तू ही (चेत्यः) स्मरण करने योग्य है, तथा तू ही (सदं इत्) सदा ही (मानुषाणां पिता माता) मनुष्यों का पिता और माता है।

ज्ञानी मनुष्य तो प्रभु की महिमा बर्णन करते ही हैं, किन्तु यदि विचार-दृष्टि से देखा जाए, तो संसार का प्रत्येक पदार्थ प्रभु की कीर्ति को गा रहा है। कैसी अद्भुत रचना है, विलक्षण नियन्त्रण है, किस विचित्र विधि से जगत् का पालन-पोषण हो रहा है। प्राणियों के कल्याण तथा सुखसन्धान के लिए कितने उत्तम पदार्थों की रचना भगवान् ने की है! सचमुच प्रभु ही हम सबके माता-पिता एवं आराध्य हैं। प्रभो! हमारी यह बुद्धि सदैव बनी रहे।

५५. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥ —ऋ० ८।९८।११

हे (वसो) सब को वास देनेवाले, तथा सर्वत्र निवास करनेवाले (शतक्रतो) असंख्य सत्कृत्यों के सम्पादक प्रभो! (त्वं हि नः पिता) तू ही हम सबका पिता है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
और (त्वं माता बभूविथ) तू ही माता है। (अधा) अतएव हम (ते) तेरा (सुम्नं) उत्तम मनन (ईमहे) करते हैं।

कितने सीधे और सरल शब्द हैं! परमात्मा को सच्चे हृदय से पिता-माता माननेवाला पापाचरण कैसे करेगा?

ओम्

५६. (क) हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥

—य० ४०।१७॥

(हिरण्मयेन) ज्योतिर्मय, सुनहरी (पात्रेण) पात्र=ढकने से (सत्यस्य) सचाई का (मुखं) मुख(अपिहितं) ढका हुआ है। (यः) जो (असौ) प्राण में तथा (आदित्ये) सूर्य में (पुरुषः) व्यापक है, (सः असौ अहं) वह मुझमें है, मैं उसमें हूँ, उसका नाम (ओ३म्) ओ३म् है, वह (खं) आकाश की भाँति व्यापक तथा (ब्रह्म) सबसे महान् है।

(ख) मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमन्दधातु। विश्वे देवास ऽ इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

—य० २।१३॥

(मनः) मन (आज्यस्य) ज्ञान के (जूतिः) प्रकाश को (जुषतां) प्रीतिपूर्वक सेवे। (बृहस्पतिः) ब्रह्माण्डाधिपति परमेश्वर (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (अरिष्टं तनोतु) निर्विघ्नतापूर्वक विस्तृत करे, और (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (संदधातु) भली प्रकार से धारण करे। (विश्वे देवासः) सम्पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, त्यागी महात्मा (इह) इस यज्ञ में (मादयन्तां) प्रसन्न हों। हे यजमान! (ओ३म्) परमात्मा में (प्रतिष्ठ) स्थिति कर अथवा ओ३म् के जाप द्वारा प्रतिष्ठा पा।

इन दोनों मन्त्रों में परमात्मा का 'ओ३म्' नाम और उसमें प्रतिष्ठित होने का उपदेश है।

प्रत्येक कार्यारम्भ में परमेश्वर का नाम

५७. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥

—अ० २०।१५।४॥

(हे पुरुष्टुत) अत्यन्त स्तोतव्य! (प्रभूवसो) प्रभूतैश्वर्य्य-सम्पन्न (इन्द्र) विघ्न-विनाशक परमात्मन्! (ये वयं) जो हम (त्वा+आरभ्य) तेरा आरम्भ करके अर्थात् प्रत्येक सत्कर्म्म के आरम्भ में तेरा ध्यान करके (चरामसि) व्यवहार करते हैं, (इमे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ते) ये वे हम (ते) तेरे ही हैं। (त्वत् अन्यः) तुझसे भिन्न कोई और (गिर्वणः) उपासक की(गिरः) पुकार को (नहि) नहीं (सघत्) सुनता (क्षोणीरिव) पृथिवी की भाँति तू (नः) हमारी(तत् वचः) उस वाणी, गुहार, प्रार्थना को (प्रति हर्य) स्वीकार कर।

प्रत्येक कार्य के आरम्भ में भगवान् का स्मरण अवश्य करना चाहिए। जिस प्रकार भूमि बीज डालने पर अवश्य प्रतिफल देती है, इसी प्रकार कर्म अवश्य फल देते हैं।

परमेश्वर का कोई प्रतिनिधि नहीं

५८. पदा पणींरराधसो नि बाधस्व महाँ असि।
नहि त्वा कश्चन प्रति॥ —अ० २०।६३।२॥

हे प्रभो ! (अराधसः) दान न देनेवाले, आराधना करनेवाले (पणीन्) केवल व्यवहारी लोगों को तू (पदा) मानो पाद से (नि) सर्वथा (बाधस्व) बाधित करता है, तू इतना (महान् असि) महान् है कि (कश्चन) कोई भी (त्वा प्रति) तेरे बराबर तेरा प्रतिनिधि (न हि) नहीं है।

संसार में न तो कोई परमेश्वर के समान है, और न ही कोई उसका प्रतिनिधि पैगम्बर, रसूल, अवतार आदि हो सकता है। जो सत्कर्म नहीं करते, दानादि नहीं करते, उनको प्रभु दण्ड देते हैं।

जीवात्मा

५९. अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥
—ऋ० १।१६४।३०॥

परमेश्वर (पस्त्यानाम्) घरों=शरीरों के (मध्ये) बीच में रहनेवाले (ध्रुवं) अविनाशी (तुरगातु) तीव्र गतिवाले (जीव) जीव को (एजत्) गति देता तथा (अनत्) प्राणशक्ति-सम्पन्न करता हुआ (शये) रहता है। (अमर्त्यः) मरण=विनाशरहित (जीवः) जीवात्मा (स्वधाभिः) अपने कर्मों के कारण अथवा अपनी शक्ति के कारण (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के कारण (मृतस्य) इस मरणधर्मी शरीर अथवा जगत् का (सयोनिः) समान स्थानवाला होकर जगत् में (आचरति) सब ओर विचरता है। अथवा (मृतस्य अमर्त्यः जीवः) मृतः=देह का स्वामी अमर्त्य =न मरनेवाला जीवात्मा (स्वधाभिः) अपने पुण्यपापरूप कर्मों के कारण (मर्त्येन सयोनिः) मरणधर्मी शरीर के साथ समान स्थानवाला होकर जगत् में (आचरति) बार-बार आता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवात्मा नित्य है, देह अनित्य है। भले-बुरे कर्मों के कारण जीवात्मा को बारम्बार इस संसार में आना पड़ता है। शरीर का नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। शरीर के अन्दर रहनेवाले इस देहाभिमानी में जगज्जीवनाधार परमात्मा प्रभु अनुशयन करते हैं, अर्थात् अभिमानरहित अनुशयी हैं।

इच्छाद्वेषादियुक्त

६०. पतंगमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥

—ऋ० १०।१७७।१॥

(असु-रस्य) प्राणदाता ईश्वर की (मायया) कुशलता से (अक्तं) शरीर-सम्बन्ध से व्यक्त हुए अथवा गतिशील (पतंगं) जीवात्मा को (विपश्चितः) ज्ञानीजन (हृदा) हृदय की भक्ति से और (मनसा) मननशक्ति से (पश्यन्ति) देखते हैं=साक्षात् करते हैं। (कवयः) क्रान्तदर्शी महात्मा (समुद्रे अन्तः) संसार में अथवा अन्तःकरण में (विचक्षते) विशेष रूप से दर्शन करते हैं। और (वेधसः) धारणा-ध्यान करनेवाले मेधावी ध्यानीजन (मरीचीनां पदं) तेजों के=ज्ञानों के मूलस्थान को (इच्छन्ति) प्राप्त करना चाहते हैं।

६१. पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वयं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति॥

—ऋ० १०।१७७।२॥

(पतंगः) आत्मा (मनसा) मन के साथ (वाचं) वाचाशक्ति को (बिभर्ति) धारण करता है। (तां) उसी वाणी को (गन्धर्वः) वाणी का धारण करनेवाली प्राणशक्ति (गर्भे अन्तः) अन्दर ही अन्दर (अवदत्) उच्चारण करती है। (कवयः) ज्ञानी (तां) उस (स्वयं) आत्मप्रकाशस्वरूप (मनीषां) मनोभावों को प्रकाशित करनेवाली (द्योतमानां) तेजस्विनी वाणी को (ऋतस्य पदे) सत्य की प्राप्ति के लिए, अथवा सत्य के ज्ञापक=वेद के प्रचार के निमित्त (नि पांति) सर्वथा सुरक्षित रखते हैं।

६२. अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः॥

—ऋ० १।१७७।३॥

(आ च परा च) सीधे-उलटे (पथिभिः) मार्गों से (चरन्तं) विचरनेवाले और (अ-नि-पद्यमानं) नाश न होनेवाले (गोपां) इन्द्रियाधिपति को (अपश्यं) मैंने देख लिया है=जान लिया है। (सः) वह (विषूचीः सध्रीचीः वसानः) उलटी-सीधी चालों को चलता हुआ (भुवनेषु अन्तः) संसार में=अथवा शरीरों में (आवरीवर्त्ति) बार-बार लौटता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस सूक्त में जीवात्मा को 'पतंग' कहा गया है। 'पतंग' शब्द का अर्थ है, जो गति द्वारा ही स्थानान्तर में आ-जा सके, अर्थात् जो व्यापक न हो।

प्रथम मन्त्र में जीव को 'अक्तं'=शरीर-सम्बन्ध से प्रतीत होनेवाला कहा है। जीवात्मा अतीव सूक्ष्म है, शरीर-सम्बन्ध के बिना साधारण जनों को इसकी प्रतीति नहीं हो सकती। इसी मन्त्र में जीव को 'मरीचीनां पदं' अर्थात् 'प्रकाश का मूल स्थान' कहा है, जिस प्रकार मरीचीमाली सूर्य आकाश में एक स्थान में रहता हुआ समस्त ब्रह्माण्ड में प्रकाश करता है, उसी प्रकार जीवात्मा शरीर में, हृदयाकाश में रहता हुआ समस्त शरीर में चेतनाशक्ति का संचार करता है। इसी समता के कारण वेद में जीवात्मा और सूर्य के बहुत-से नामों में समानता है। 'हृदा मनसा पश्यन्ति' से उसकी सूक्ष्मता का निर्देश किया है।

दूसरे मन्त्र में जीवात्मा को मन तथा वाणी का धारक बतलाया है। मन्त्रार्थ पर जरा-सा ध्यान देने से प्रतीत हो जाएगा कि इसमें एक प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्त ['आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रिमर्थेन'—जब जीवात्मा कुछ करना चाहता है तो मन से संयुक्त होता है, मन इन्द्रिय से, और इन्द्रिय अर्थ=विषय से संयुक्त होती है, पश्चात् विषय का ज्ञान होता है] का सरल-सुबोध रीति से वर्णन किया है। 'वाचं' कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों का उपलक्षण है।

तीसरे मन्त्र में जीव को 'अनिपद्यमानम्' अविनाशी=नित्य बताया गया है। 'आ च परा च पथिभिश्चरन्तम्' से जीव में प्रयत्न का होना प्रतिपादन किया है, और उलटी-सीधी चाल का चलनेवाला कहकर उसमें 'इच्छा' और 'द्वेष' का भी निरूपण कर दिया है। मन्त्र के उत्तरार्ध में पुण्य-पाप के कारण संसार में पुनः-पुनः आना वर्णन किया है, संसार में पुनः-पुनः आने का अर्थ सुख-दुःखोपभोग है। गोपा =इन्द्रियाधिष्ठाता कहकर उसे इन्द्रियों से पृथक् सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार विचारें, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि गौतम मुनि कृत 'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञा-नान्यात्मनो लिङ्गम्, (न्या० १।१।६) का मूल यह सूक्त है। वेद ने इन लक्षणों का केवल निर्देश ही नहीं किया, अपितु उनके साथ युक्ति भी दी है।

प्रसंगात् इसी सूक्त में आत्मज्ञानोपाय, वाणी का उपयोग आदि भी बतलाया है।

अणु

६३. अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्म्माणि कृण्महे ॥ —अ० १९।६८।१॥

(अव्यसः) अध्यापक (च च) और (व्यचसः) व्यापक के (बिलं) भेद को (मायया) बुद्धि द्वारा (विष्यामि) खोलता हूँ, स्पष्ट करता हूं। (ताभ्यां) उन दोनों से (वेदं) वेद को (उद्धृत्य) ग्रहण कर (अथ) पश्चात् (कर्माणि) कर्मों को (कृण्महे)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम करते हैं।

जीवात्मा अव्यापक=परिच्छिन्न=अणु है। परमात्मा व्यापक है। इनका भेद जानना आवश्यक है। परमात्मा और आत्मा के संयोगविशेष से वेदज्ञान मिलता है, वेदज्ञान प्राप्त करके सत्कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

सायणाचार्य ने भी 'अव्यसः' का 'अव्यापकस्य परिच्छिन्नस्य जीवात्मनः' अर्थ लिखकर स्पष्ट जीवात्मा को परिच्छिन्न बताया है।

६४. बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥ —अ० १०।८।२५॥

(एकं) एक जीवात्मा (बालात् अणीयस्कं) बाल से भी अति सूक्ष्म है (उत) और (एक) एक प्रकृति (न दृश्यते इव) मानो दीखती ही नहीं। (देवता) परमाराध्य परमात्म देवता (ततः) उनसे भी (परिष्वजीयसी) सूक्ष्म और व्यापक है। (सा मम प्रिया) वह मुझे प्रिय है।

प्रकृति अति सूक्ष्म है, जीव भी सूक्ष्म है, किन्तु परमात्मा इनकी अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म है।

इस मन्त्र की 'बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च। भागो जीवो विज्ञेयः' श्वेताश्वतरोपनिषत् (५-९) के साथ तुलना कीजिए। उपनिषद्वचन वेदमन्त्र की व्याख्या के अतिरिक्त है ही क्या!

प्रकृति

६५. एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे॥
—अ० १०।८।३०॥

(एषा) यह (सनत्नी) सनातन=सदा रहनेवाली नित्य प्रकृति (सनं एव) सदा ही (जाता) प्रसिद्ध है, विद्यमान है, अथवा कार्य उत्पन्न करती रहती है। (एषा पुराणी) यह पुरानी [पुरानी होती हुई भी नित्य नये रूप धारण करनेवाली प्रकृति] (सर्वं) सब कार्यों में (परि बभूव) पूर्णतया रहती है। यह (मही) बड़ी तथा (देवी) कान्तिमयी है, तथा (उषसः) कमनीय पदार्थों को (विभाती) विशेष रीति से प्रकाशित करनेवाली है (सा) वह प्रकृति (एकेन एकेन) प्रत्येक (मिषता) गतिशील जीव के साथ (विचष्टे) अपना स्वरूप प्रकट कर रही है।

इस मन्त्र में प्रकृति को नित्य कार्यरूप में परिणत होनेवाली तथा सब कार्यों का कारण बताया गया है।

६६. अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥ —अ० १०।८।३१॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(वैं) निश्चय से (अविः नाम) अवि=प्रकृति नामक एक (देवता) दिव्यगुण-सम्पन्न पदार्थ है जो (ऋतेन) सत्यनियम से (परीवृता) ढकी (आस्ते) रहती है अर्थात् जिसमें सब परिणाम नियमानुसार होते हैं अथवा (ऋतेन) सर्वव्यापक परमात्मा से (परीवृता) परि=सब ओर अन्दर-बाहर वृता=आच्छादित (आस्ते) रहती है अथवा (ऋतेन) जीवसमुदाय से अपने-अपने भोग की प्राप्ति के लिए (परीवृता आस्ते) स्वीकार की जाती है, ग्रहण की जाती है, (तस्याः रूपेण) उसी के रूप से (इमे) ये (हरितस्रजः वृक्षः) हरी मालाओंवाले वृक्ष (हरिताः) हरे रहते हैं।

'अविः' शब्द 'अव' धातु से सिद्ध होता है, जिसके अनेक अर्थों में से एक अर्थ है 'स्वाम्यर्थ'=स्वामी की सम्पत्ति। सांख्यादि शास्त्रों में पुरुष को प्रकृति का स्वामी, और प्रकृति को उसका स्व=धन=सम्पति कहा गया है, उस सिद्धान्त को वेद का 'अविः' शब्द बताता है। प्रकृति के सब कार्य नियमों के अधीन हैं, इसका उपदेश 'ऋतेनास्ते परीवृता' से किया गया है। इस छोटे-से वाक्य में परमेश्वर का प्रकृति में व्यापकत्व, प्रकृति का पदार्थत्व=पुरुष के लिए होना, तथा संसार का नियमयुक्त होना बताया गया है। 'वृक्ष' से तात्पर्य प्राणीमात्र के शरीर हैं। ये सारे शरीर प्राकृतिक हैं, अतः प्रकृतिजन्य पदार्थों से ही इनका भरण-पोषण हो सकता है।

६७. अजारे पिशंगिला श्वावित्कुरु पिशंगिला।
शश ऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति॥ —य० २३।५६॥

(अरे) हे मनुष्य ! (अजा) जन्मरहित=अनादि प्रकृति (पिशंगिला) प्रलय-काल में रूपों को निगल जाती है, अर्थात् सारी कार्य वस्तुएँ कारणरूप में लीन हो जाती हैं।(श्वावित्) वृद्धि को प्राप्त होकर=कार्य-अवस्था में परिणत होकर (कुरु-पिशंगिला) कार्यों के रूपों को उगलने=प्रकट करनेवाली होती है। (शशः) चतुर ज्ञानी पुरुष (आस्कन्दं अर्षति) प्राकृत पदार्थों से कूद जाता है अर्थात् प्रकृति के बंधन से परे हो जाता है और (अहिः) सर्पवत् कुटिल स्वाभाववाला मनुष्य (पन्थां) मार्ग पर=जन्म-मरण के मार्ग पर (वि) विविध रीतियों से अथवा विवश होकर(सर्पति) चलता है, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है।

सृष्टि

६८. रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन॥
—अ० १३।१।६॥

(रोहितः) तेजस्वी परमात्मा ने (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(जजान) उत्पन्न किए, (तत्र) उनके बीच (परमेष्ठी) परमात्मा ने (तन्तुं) एक धागे को (ततान) फैलाया है और (बलेन) शक्ति से (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ता से धारण किया है (तत्र) वहाँ (एकपात्) अकेला चलनेवाला (अजः) अज=जीव (शिश्रिये) आश्रय लेता है।

सृष्टि का कर्त्ता परमेश्वर है, वही इसमें नियम का तन्तु=धागा पिरोता है। स्वशक्ति से ही इन लोक-लोकान्तरों को धारण करता है। जीवों के कल्याण के लिए सृष्टि होती है। परमेश्वर को 'रोहित' उगानेवाला, उन्नति करनेवाला कहकर एक अद्भुत मर्म का उपदेश किया है। जैसे बिना बीजादि के खेती नहीं हो सकती, इसी प्रकार अभाव से सृष्टि नहीं हो सकती। परमेश्वर जीवों की उन्नति अर्थात् अभ्युदय और मोक्ष-प्राप्ति के लिए सृष्टि-रचना करता है।

तीन अनादि

६९. त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥

—ऋ० १।१६४।४४॥

(त्रयः केशिनः) तीन प्रकाशमय पदार्थ (ऋतुथा) नियमानुसार (विचक्षते) विविध रूप से अपना ज्ञान करा रहे हैं=नाना कार्य कर रहे हैं। (एषां) इनमें से (एकः) एक (संवत्सरे) काल में=सृष्टि-काल में अथवा वासयोग्य संसार के लिए (वपते) बीज डालता है। (एकः) एक (शचीभिः) शक्तियों से, कर्म से, ज्ञान से, (विश्वं अभिचष्टे) संसार को दोनों ओर से देखता है (एकस्य) एक का (ध्राजिः) वेग (ददृशे) दीखता है, किन्तु (रूपं न) रूप नहीं दीखता।

ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति ये तीन पदार्थ हैं जो जगत् का कारण हैं। इस मन्त्र में इन तीनों का स्वरूप बताया गया है। परमेश्वर जीवों के कर्मफल देने के लिए सृष्टि रचता है, यही उसका बीज डालना है। जीव स्वकर्मानुसार सुख-दुःख का उपभोग करता है अथवा अभ्युदय और निःश्रेयस् पाता है, इसे संसार के दोनों ओर देखना कहा है। प्रकृति का वेग=कार्य तो चर्मचक्षुओं से दीखता है, किन्तु उसका रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, अर्थात् वह सूक्ष्म है। यहाँ तीनों को केशी=प्रकाशमय कहा है। जीवात्मा तथा परमात्मा के प्रकाशस्वरूप होने में किसी को सन्देह हो नहीं सकता। सूर्य-चन्द्रादि तेजःपुंज पदार्थ प्रकृति का कार्य हैं। कार्य में जब प्रकाश है, तो कारण में भी अवश्य होगा। इस रीति से तीनों प्रकाशमय हैं।

७०. अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥

—ऋ० १।१६४।१॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह सारा संसार (अस्य) इस परम प्रसिद्ध (वामस्य) वमनीय, चाहने योग्य (पलितस्य) गुणों द्वारा सर्ववृद्ध अथवा सर्वपालक (होतुः) योग्यदाता प्रभु का है (अशनः) खानेवाला=भोक्ता जीव (तस्य) उसका (मध्यमः) गुणों से मंझला (भ्राता) भाई है। इनमें (तृतीयः भ्राता) तीसरा भाई (घृतपृष्ठः) घृत=भोग्य पदार्थों का पृष्ठ=आधार है, (अत्र) इसी संसार में (अस्य) इस घृतपृष्ठ=प्रकृति के (विश्पतिं सप्तपुत्रम्) प्रजापालक सात पुत्रों को (अपश्यम्) मैं जानता हूँ।

परमेश्वर में अनन्त गुण होने से वह सबसे श्रेष्ठ है। प्रकृति विकृति को प्राप्त होती है। जीव भी बन्धमोक्ष को प्राप्त करता है, किन्तु परमात्मा सदा शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव और एकरस है, अतः परमात्मा इनसे बड़ा है। प्रकृति जड़ होने से अपने-आप कोई गति नहीं कर सकती, जीव कर सकता है। अतः प्रकृति से उत्कृष्ट किन्तु परमात्मा की अपेक्षा निकृष्ट होने से मध्यम कहलाता है। परमेश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है, प्रकृति अज्ञ है, अतएव भी जीव मंझला है। प्रकृति को इस मंत्र में घृतपृष्ठ कहा है। १. महत्तत्त्व २. अहंकार ३. सात पंचतन्मात्राएँ प्रकृति के सात पुत्र हैं, इन्हीं से सारी सृष्टि का पालन होता है।

प्रवाह से अनादि

७१. सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ —ऋ० १०।१९०।३॥

(धाता) विधाता ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्र को स्व-प्रकाश और परतः प्रकाश्य लोकों (दिवं) द्युलोक (च) और (पृथिवीं) पृथिवी को (च) और (अंतरिक्षं) अन्तरिक्ष को (अथो) और (स्वः) तज्जन्य सुख को (यथापूर्वं अकल्पयत्) पूर्व की भाँति रचा।

जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात आती है, रात्रि के अनन्तर पुनः दिन होता है, इसी प्रकार सृष्टि और संहार का क्रम है। सृष्टि से पूर्व प्रलय, प्रलय से पूर्व सृष्टि, यह क्रम अनादि काल से चला आता है। इसको वेद का 'यथापूर्वं' शब्द स्पष्ट प्रतिपादन कर रहा है।

७२. त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे॥
—ऋ० ५।८।५॥

हे (पुरुष्टुत अग्ने) बहुधा स्तूयमान तेजोमय प्रभो! (त्वं) तू (प्रत्नथा) पूर्व की भाँति, अथवा पूर्वकर्मानुसार (विशे विशे) प्रत्येक पदार्थ को (वयः दधासि) आयु, बल, कान्ति, जीवन आदि देता है (सहसा) अपनी शक्ति के कारण तू (पुरूणि अन्ना) सब भोग्य पदार्थों का (विराजसि) विशेष रूप से स्वामी है। अथवा, अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शक्ति से नाना भोग्य पदार्थों को तू प्रकाशित करता है (सा त्विषिः) वह प्रकाश (न आधृषे) किसी से सहन नहीं किया जा सकता।

सारी सृष्टि का रचक प्रभु जीवों के पूर्वकर्मानुसार पूर्वकल्प की भांति सृष्टि रचता है। अनन्त शक्तिसम्पन्न होने के कारण वह सब भोग्यपदार्थों का स्वामी है, अतः यथायोग्य करने में सर्वथा समर्थ है। उसकी इस शक्ति का कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता।

सर्गारम्भ में युवा मनुष्य उत्पन्न हुए

७३. ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन॥
—ऋ० ५।५९।६॥

(ते) वे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य(उद्भिदः) मानो उद्भित् =वनस्पति आदि की भाँति उत्पन्न हुए, और (अज्येष्ठा+अकनिष्ठासः+अमध्यमासः) उनमें कोई ज्येष्ठ, कनिष्ठ और मंझला न था, अर्थात् आयु में सब समान थे, वे (महसा वावृधुः) तेज से बढ़े। (सुजातासः) उत्कृष्टजन्मा वे लोग (जनुषा पृश्नि-मातरः) जन्म से प्रकृति मातावाले तथा (दिवः मर्या) मानो प्रकाशमय प्रभु के मनुष्य=पुत्र (नः अच्छा आ जिगातन) हम सबकी अपेक्षा अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

७४. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥
—ऋ० ५।६०।५॥

सर्गारम्भ में उत्पन्न मनुष्य (अज्येष्ठासः) ज्येष्ठरहित (अकनिष्ठासः) कनिष्ठ-रहित होते हैं, (एते भ्रातरः सौभागाय सं वावृधुः) ये भाई कल्याण के लिए एक-से बढ़ते हैं।(युवा) सदा जवान (स्वपाः) सदा श्रेष्ठकर्मा (रुद्रः) पापियों को रुलाने-वाला शक्तिशाली प्रभु (एषां) इनका (पिता) पिता है और (मरुद्भ्यः सुदिना) उद्यमी मनुष्य के लिए सुकाल स्थित करनेवाली (पृश्निः) प्रकृति अथवा पृथिवी इन के लिए (सुदुघा) सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली होती है।

इन दोनों मन्त्रों का देवता 'मरुतः' है। मरुत का अर्थ निघंटु के अनुसार मनुष्य है। कितने स्पष्ट और निर्भ्रान्त शब्दों में जवान मनुष्यों की उत्पत्ति का वर्णन है!

आज पाश्चात्य विद्वान् भी वेद के इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं— 'स्मिथसोनियम इन्स्टीट्यूशन (Smithsoniam Institution) अमेरिका में एक वैज्ञानिक संस्था है। उसमें डॉ० क्लार्क नामक प्रख्यात प्राणिशास्त्र कार्य करते हैं। उनका मत उद्धृत करते हुए 'Quarterly Review of Biology' में लिखा है—

"According to Dr. Clerk's belief man appeared in the Pliocene age just preceding the Ice age. He appeared suddenly

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

and in substantially the same form as he is today. There is not the slightest evidence of his existance before that time. "He appeared able to walk, able to think and able to defend himself." Dr. Clark holds, there are no missing links.

डॉ० क्लार्क के मतानुसार—मनुष्य हिमयुग से ठीक पूर्व प्लायोसीन युग में हुआ। वह अचानक उत्पन्न हुआ, और सर्वथा इसी आकार में, जैसा कि आज है। इससे पूर्व उसकी सत्ता का कोई प्रमाण नहीं। वह उत्पन्न होते ही चलने, विचारने तथा आत्मरक्षा करने में समर्थ था। डॉ० क्लार्क का सिद्धान्त है कि उससे पहले की कोई कड़ी गुम नहीं है।

डॉ० जी ने विकासवाद के खंडन में यह लेख लिखा है।

वेद

ईश्वरीय कविता

७५. अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ —अ० १०।८।३२॥

मनुष्य (अन्ति सन्तं न पश्यति) समीप रहनेवाले परमात्मा अथवा अपने आत्मा को नहीं देखता है, और (अन्ति सन्तं न जहाति) उस पास रहनेवाले को छोड़ भी नहीं सकता। हे मनुष्य! (देवस्य काव्यं) ईश्वर के काव्य=वेद को (पश्य) देख, वह (न जीर्यति न ममार) न पुराना होता है और न मरता है।

आत्मा और परमात्मा इतने सूक्ष्म हैं कि बिना विशेष ज्ञान के उसके दर्शन होने असम्भव हैं। किन्तु अदृश्य होने से कोई उनका त्याग भी नहीं कर सकता, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए परमात्मा की रचना वेद को पढ़ना, विचारना चाहिए। प्रभु का यह काव्य=रसमय उपदेश सदा बना रहता है, कभी विनष्ट नहीं होता, कभी पुराना नहीं होता, अर्थात् वेद में 'तरमीम-तन्सीख'=परिवर्तन, न्यूनाधिकता और उसका लोप कभी नहीं होता। सदा नया बना रहता है।

वेदाविर्भाव का काल

७६. बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥
—ऋ० १०।७१।१॥

(बृहस्पते) हे वेदाधिपते अन्तरात्मन् परमेश्वर! आपकी कृपा से (प्रथमं) उत्पत्त्यनन्तर इतर बाणियों के उच्चारण से पूर्व ही (नामधेयं दधानाः) पदार्थों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नामकरण करने के अभिलाषी ऋषिजन (यत्) जिस (वाचः अग्रम्) वाणियों की अग्रगण्या वाणी वेदवाणी को (प्रैरत) उच्चारण करते हैं, (यत् एषां श्रेष्ठं) जो इन सब वचनों में श्रेष्ठ है और (यत् अरिप्रं) दोषरहित है (तत्) वह (एषां) इन महात्मा के (गुहा) हृदय-गुहा में (निहितं) डाला हुआ ज्ञान (प्रेणा) इनके प्रेम के कारण (आविः) प्रकट होता है।

जब मनुष्यों की सृष्टि हुई, तो उन्होंने अपने चारों ओर नाना प्रकार के पदार्थ देखे। मनुष्यों ने उनके गुणादि जानने और नाम रखने की इच्छा की। उस समय परम कृपालु आप्तों के आप्त, गुरुओं के गुरु, सर्वविद्यानिधान भगवान् ने वाणी और ज्ञान की उनके हृदयों में प्रेरणा की। संसार में ज्ञान और वाणी का वही प्रथम प्रकाश है, उसे ही वेद कहते हैं। पूर्वकल्पकृत सुकृतों के कारण जो मनुष्य श्रेष्ठ और सुसंस्कार थे, और जिनके हृदय में भगवदाज्ञा के प्रचार की प्रबल प्रीति थी, उनके हृदय में भगवान् ने प्रेरणा की। उनसे फिर शुभ्र ज्योति सारे जगत् में जगमगाई।

कदाचित् उन महात्माओं ने, इच्छापूर्वक या अनिच्छा से, प्रभु-वचनों में कुछ मिला दिया हो, इस शंका का समाधान वेद ने स्वयं दिया है—

७७. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

—ऋ० १०।७१।२॥

(यत्र) जिस समय उन (धीराः) ध्यानी, मेधावी, महात्माओं ने (मनसा) मनन से (वाचं अक्रत) वेदवाणी का उच्चारण किया, उस समय (इव) मानो (तितउना सक्तुं पुनन्तः) चालनी से सत्तू साफ करते थे, अर्थात् जिस प्रकार चालनी से सत्तू साफ करने पर केवल सत्तू ही बाहर आते हैं, अन्य भुस आदि नहीं, उसी प्रकार उच्चारण करते समय केवल प्रभूपदिष्ट=वेद ही उनके मुख से निकला। क्योंकि, (अत्र) इस विषय में (सखायः) मित्र (सख्यानि जानते) मैत्री के नियमों को जानते हैं, अर्थात् प्रभु के वचनों में अपने वाक्य नहीं मिलाने चाहिएँ। (एषां वाचि अधि) इनकी वाणी में (भद्रा लक्ष्मीः निहिता) कल्याणमयी शोभा रखी है।

प्रभु की वाणी में कोई प्रक्षेप नहीं कर सका, कितनी आश्चर्यजनक घटना है!

वेदप्रचार

७८. नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः।
नृभिः सुवीर उच्यसे॥ —ऋ० ६।४५।६॥

प्रजा अपने राजा अथवा उपदेशक को संबोधन करके कहती है—तुझे (नृभिः सुवीरः उच्यसे) लोग श्रेष्ठ वीर कहते हैं, (उ) क्योंकि तू (द्विषः) शत्रुओं को (उक्थ-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शंसिनः) वेदभक्त (कृणोषि) बनाता है, और उनको (अति नयसि) उत्तम रीति से चलाता है।

सचमुच वह वीरों में उत्तम है, जो अपने शत्रुओं को भी वेदभक्त बनाकर उनसे द्वेषादि कुभाव छुड़ा सन्मार्ग में ले-चले।

वेद ईश्वरोक्त

७९. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥
—यजु० ३४।५८॥

(ब्रह्मणः पते) हे ब्रह्माण्डाधिपते! वेदपालक प्रभो! (देवाः) विद्वान् (यत्) जिसके (विदथे) अध्ययनाध्यापन, यजन-याजन आदि व्यवहार में (अवन्ति) रक्षा करते हैं, (त्वं) तू (अस्य) इस (सूक्तस्य) उत्तम रीति से उपदिष्ट वेद का (यन्ता) नियामक है, नियमपूर्वक दाता है, हमें उसका (बोधि) उपदेश कर और हमारे (तनयं) सन्तान को उसके उपदेश से (जिन्व) तृप्त कर। हम (सुवीराः) श्रेष्ठ वीर (तद् भद्रं) उस कल्याण-साधक वेद का (विश्वं) सारे जगत् को (वदेम) उपदेश करें।

वेद प्रभु की वाणी है, उससे सारे संसार का कल्याण होता है।

८०. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो ऽ अर्यमा देवा ऽ ओकाँसि चक्रिरे॥
—यजु० ३४।५७॥

(यस्मिन्) जिस विश्वाधार प्रभु में (इन्द्रः) विद्युत्, वायु, (वरुण) जल, चन्द्रमा (मित्र) प्राण, सूर्य प्रभृति (देवाः) देव=दिव्यगुण-सम्पन्न पदार्थ (ओकांसि चक्रिरे) मानो घर बनाकर निवास करते हैं, वह (ब्रह्मणः पति) वेदपालक जगदीश्वर (नूनं) ही (उक्थ्यं) प्रशंसनीय, उपदेश करने योग्य (मन्त्रं) वेद का उत्तम प्रकार से उपदेश करता है।

सर्वाधार परमात्मदेव ही वेद का ज्ञान प्रदान करते हैं, वे ही इसकी रक्षा करते हैं।

८१. अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्।
अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे॥
—ऋ० १०।४९।१॥

प्रभु उपदेश करते हैं—(अहं) मैं (गृणते) उपासक को (पूर्व्यं वसु दां) मुख्य या पूर्वकर्मसंचित धन देता हूँ। मैं ही (ब्रह्म) वेद (कृणवं) रचता हूँ, अतएव (मह्यं वर्धनम्) मेरी सब बड़ाई है। (अहं यजमानस्य चोदिता भुवं) मैं यजमान का=

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पदों का सम्बन्ध किसी से भी नहीं बनता। अतः 'छन्दांसि' का अर्थ 'अथर्ववेद' ही ठीक है। फिर ऊपर दिये गए मन्त्र से मिलाइए, जो क्रम वहाँ है, वही यहाँ है, इसलिए भी छन्दांसि का अर्थ 'अथर्ववेद' ही साधु है।

पुनर्जन्म

८४. अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ —अ० ११।४।१४॥

(पुरुषः) जीव (गर्भे अन्तरा) गर्भ में (प्राणति) श्वास लेता है और (अपानति) उच्छ्वास लेता है। हे (प्राण) प्राणप्रद जीवनाधार प्रभो ! (यदा त्वं जिन्वसि) जब तू अनुमति देता है, (अथ) तब (सः पुनः जायते) वह पुनर्जन्म लेता है।

'पुनः जायते' का अर्थ 'पुनर्जन्म लेता है' के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। यदि कोई कहे कि यहाँ गर्भ से बाहर आने को कहने के लिए 'पुनः' शब्द है, तो वह भूल में है, क्योंकि इसका वाचक 'अथ' शब्द मन्त्र में है। मन्त्र के पहले भाग का तात्पर्य है कि प्राणी गर्भ में भी श्वास-प्रश्वास किया करता है।

८५. पुनर्मनः पुनरायुर्म ऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म ऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म ऽआगन्। वैश्वानरो ऽ अदब्धस्तनूपा ऽ अग्निर्नः पातु दुरितावद्यात् ॥ —य० ४।१५॥

(मे) मुझे (मनः पुनः आगन्) मन फिर से प्राप्त हुआ है, (प्राणः पुनः) प्राण भी फिर से मिला है, (चक्षुः पुनः) आँख भी नूतन ही मिली है, (श्रोत्रं मे पुनः आगन्) कान भी मुझे फिर से मिले हैं, (आत्मा मे पुनः आगन्) शरीर भी मुझे नया ही मिला है, अतएव (मे पुनः आयुः आगन्) मेरा पुनर्जन्म हुआ है। (वैश्वानरः) सर्वजनहितकारी (अदब्धः) परम बलधारी (तनूपाः) सर्वशरीररक्षाकारी, समस्तदुरितसंहारी, भवभयहारी भगवान् (दुरितात् अवद्यात्) दुरित=दुर्गति और अवद्य =निन्दा से अथवा दुराचार तथा पाप से (नः पातु) हमारी रक्षा करें।

'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः' (न्या० द० १।१।१९) सूत्र पर भाष्य करते हुए वात्स्यायन मुनि ने लिखा है—'पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः' अर्थात् फिर से देह आदि के साथ आत्मा के सम्बन्ध को पुनरुत्पत्तिः=पुनर्जन्म कहते हैं। वेदमन्त्र के पूर्वार्द्ध को इस वचन के साथ पढ़ने से 'पुनर्जन्म का वेद में वर्णन नहीं है' मत भ्रान्त प्रतीत होता है। अधमयोनिप्राप्ति से बचने के लिए उत्तरार्द्ध में भगवान् से प्रार्थना की है—

८६. अपस्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे।
गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ —य० १२।३६॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे (अग्ने) जीव ! (अप्सु) जल में (तव) तेरा (सधिः) स्थान है, (सः) वह तू (ओषधीः) ओषधि-वनस्पतियों में (अनुरुध्यसे) कर्मानुकूल रोका जाता है, और (गर्भे) गर्भ में (सन्) होता हुआ तू (पुनः जायसे) पुनः जन्म लेता है।

इस मन्त्र पर ध्यान दीजिए। इसमें जीव के अनेक योनियों में जाने का वर्णन है—कर्मवश जीवात्मा जलस्थानों में जन्म लेता है, कहीं ओषधि-वनस्पति में रुकता है, कहीं गर्भ के द्वारा जन्म लेता है।

'सौषधीरनुरुध्यसे' पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि जीव बहुत ही विवश होता है।

मुक्ति

स्वरूप

८७. यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन्मां धेहि पवमानाऽमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥
—ऋ० ९।११३।७॥

हे (पवमान) शुद्ध ! पवित्र करनेवाले प्रभो ! (यत्र) जिस अवस्था में (अजस्रं ज्योतिः) अखण्ड प्रकाश है (यस्मिन् लोके) जिस अवस्था में (स्वः हितम्) आनन्द रहता है (तस्मिन् अक्षिते अमृते लोके) वह अक्षय=न्यूनतारहित मुक्ति-अवस्था (मां धेहि) मुझको धारण कीजिए। हे (इन्दो) सर्वानन्दप्रद प्रभो ! (इन्द्राय) मोक्षरूपी ऐश्वर्य के लिए (परि स्रव) परिपूर्ण कृपा-वृष्टि कीजिए।

प्रकाशमय, आनन्दमय अवस्था का नाम मुक्ति है। उस अवस्था का प्रकाश अखण्ड=अर्थात् अच्छिद्र और अक्षित=अन्तरालरहित होता है।

८८. यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥
—ऋ० ९।११३।९

(यत्र) जिस (त्रिनाके) आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों दुःखों से रहित (त्रिदिवे) तीन प्रकार के सुखों से युक्त अवस्था में (दिविः) मुक्ति-प्राप्त जीव का (अनुकामं) इच्छानुकूल=स्वतन्त्र (चरणं) विचरण होता है और (यत्र) जिस अवस्था में (लोकाः) दर्शनीय जीव (ज्योतिष्मन्तः) प्रकाशमय=विशुद्ध विज्ञानसम्पन्न है, (मां) मुझ (अमृतं) मुक्त को भी (तत्र कृधि) वहाँ कीजिए। हे (इन्दो) आह्लादक परमेश्वर ! (इन्द्राय परिस्रव) आनन्दरूप ऐश्वर्य के अभिलाषी जीव पर कृपा-वृष्टि कीजिए।

इन दो मन्त्रों को मिलाकर मुक्ति का स्वरूप स्पष्ट समझ में आ जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस अवस्था में कोई दुःख न हो, क्लेश न हो, पूर्ण सुख हो, आनन्द हो, सब ओर प्रकाश ही प्रकाश हो, उस अवस्था को मुक्ति=मोक्ष=अपवर्ग=ब्रह्म=अमृत=अयन आदि विविध नामों से पुकारते हैं। मनुष्य-जन्म का उद्देश्य मुक्ति-प्राप्ति है।

उपाय

८९. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

—य० ३१।१८॥

(अहं) मैं (एतं) इस परमप्रसिद्ध सर्वव्यापक (तमसः परस्तात्) अन्धकार से परे, अर्थात् अन्धकाररहित (आदित्यवर्णं) अखण्ड प्रकाशयुक्त (महान्तं पुरुषं) परमपूजनीय पूर्णपुरुष को (वेद) जानता हूँ। (तं एव विदित्वा) उसी को जानकर (मृत्युं अति एति) मृत्यु को=जन्म-मरण को लाँघ सकता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है; (अयनाय) मुक्ति के लिए (अन्यः पन्था न विद्यते) और मार्ग नहीं है।

ब्रह्मज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

९०. यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥

—अ० ४।३५।१॥

(ऋतस्य) सत्य के, सृष्टि-नियम के, वेद के (प्रथमजाः) प्रथम प्रकाशक, मुख्य-बोध्य (प्रजापति) प्रजापालक प्रभु ने (तपसा) अपने तप से, अपने ज्ञान से (यं ओदनं) जिस रसदायी ज्ञानरूप ओदन को, अथवा संसाररूप ओदन को (ब्रह्मणे) जीव के लिए, मुक्ति के लिए (अपचत्) पकाया, और (यः) जो (लोकानां) संसार का अथवा प्रकाश का (विधृतिः) विशेष धारक है और जो (न अभि रेषात्) हानि नहीं पहुँचाता, दुःखदायी नहीं होता, (तेन ओदनेन) उस परिपक्व ज्ञानरूप ओदन से अथवा संसाररूप ओदन से (मृत्युं अति तराणि) मृत्यु को पार जाऊँ, मुक्त हो जाऊँ।

ब्रह्म शब्द का अर्थ मुक्ति है, देखो न्यायभाष्य (१।१।१९)। परमात्मा ने अत्यन्त कृपा से सर्गारम्भ में मनुष्यों को लौकिक तथा पारलौकिक अभीष्टसाधक ज्ञान प्रदान किया। उस ज्ञान को प्रदान करने से मुक्ति सिद्ध होती है। यह संसार भी जीव की मुक्ति के लिए है। योगदर्शन में कहा है 'भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'—यह दृश्य=संसार भोग और मोक्ष के लिए है। संसार का ज्ञान प्राप्त किये बिना मोक्ष असम्भव है, क्योंकि उसके बिना ब्रह्मज्ञान हो ही नहीं सकता।

इस मन्त्र में 'ओदन' शब्द का अर्थ हमने ज्ञान, संसार और प्रकृति किया है। अथर्ववेद ११।३।५० देखिए, वहाँ लिखा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

९१. "एतद्वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः" —अ० ११।३।५०॥

यह परमप्रकाश धारण करनेवाला है, जो ओदन है।
प्रसंग से इसके अगले मन्त्र भी अर्थसहित लिख देते हैं—

९२. ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते व एवं वेद॥

—अ० ११।३।५१॥

(यः एवं वेद) जो इस प्रकार इस रहस्य को जान लेता है, वह (ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते) परमप्रकाश के धारक में आश्रय पाता है और अतएव (ब्रध्नलोको भवति) प्रकाशमय हो जाता है।

९३. एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः।

—अ० ११।३।५२॥

(एतस्मात् वै ओदनात्) इस ही ओदन=ज्ञान से (प्रजापतिः) प्रजापति ने (त्रयस्त्रिंशतं लोकान्) तैंतीस लोकों को (निरमिमीत) निर्माण किया।

९४. तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत॥ —अ० ११।३।५३॥

उनके उत्तम बोध के लिए उसने यज्ञ=वेद और संसाररूपी यज्ञ रचा।

९५. स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि।

९६. न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते।

९७. न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति॥

—अ० ११।३।५४, ५५, ५६॥

(एवं विदुषः) इस रहस्य को जाननेवाले का (यः) जो (उपद्रष्टा) समीप होकर निरीक्षण करनेवाला=शिष्य (भवति) होता है, वह (प्राणं रुणद्धि) प्राणों को रोकता है=प्राणायामादि का अभ्यास करता है। (च) यदि (प्राणं न निरुद्धि) प्राणायाम आदि नहीं करता है, तो (सर्वज्यानिं जीयते) सारी आयु की हानि उठाता है, अर्थात् नाना रोगों से दबा रहता है। (च) यदि (सर्वज्यानिं न जीयते) सारी आयु की हानि नहीं उठाता है, तो (प्राणः) प्राण (एनं) इसको (जरसः पुरा) बुढ़ापे से पहले (जहाति) छोड़ जाता है।

जिस पुरुष को निश्चय हो जाता है कि ब्रह्मज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, वह मुक्ति का अभिलाषी मनुष्य ब्रह्मवेत्ता के पास जाता है, उससे शिक्षा लेता है और प्राणायामादि योगाभ्यास करता है। जो योगाभ्यास नहीं करता, वह मुक्ति से तो वंचित होता ही है, साथ ही सारी आयु या तो दुःख में बिताता है, या जवानी में मर जाता है, इस वास्ते योगाभ्यास करना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

९८. सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥
—ऋ० १०।५।५॥

(मध्वः वावशानः विद्वान्) मधु=मोक्ष की कामना करनेवाला विद्वान् (सप्त) सात (अरुषीः) चंचल=बलशाली (स्व-सृः) अपने-अपने विषयों की ओर दौड़नेवाली इन्द्रियों को (कं दृशे) आनन्दमय भगवान् को देखने के लिए=साक्षात् करने के लिए (उत्‌जभार) ऊपर उठाता है, अर्थात् उनके विषयों से दूर करता है, इसके पश्चात् उनको वह विद्वान् (पुराजाः) इन्द्रियादि सम्बन्ध से पूर्व विद्यमान जीव (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तःकरण में (येमे) नियमन करता है तब (पूषणस्य) पुष्टिकर्त्ता भगवान् (वव्रिं) वर को (इच्छन्) चाहता हुआ (अविदत्) उसे प्राप्त कर लेता है।

जो आत्मकल्याण, प्रभुदर्शन की अभिलाषा रखता है उसे पहले अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना चाहिए, ऐसे मनुष्य पर प्रभु की विशेष कृपा होती है।

सात इन्द्रियाँ=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, जिह्वा तथा उपस्थ।

९९. मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥ —अ० १०।२।२६॥

(पवमानः) पवित्र सदाचारी (अथर्वा) अकम्प=निश्चल योगी अपने (मूर्धानं) मूर्धा=मस्तिष्क=दिमाग को (च) और (अस्य यत् हृदयं) इसका जो हृदय है, उसको (संसीव्य) एक-सा सीकर=एक बनाकर (मस्तिष्काद् ऊर्ध्वः) मस्तिष्क से=तर्क-वितर्क से ऊपर उठकर (शीर्षतः अधि) सिर से भी परे ब्रह्मरन्ध्र में (प्रेरयत्) प्रेरणा करता है।

योगी हृदय और मस्तिष्क को एक-सा करते हैं, अर्थात् न तो भावावेश में आते हैं, और न ही शुष्क तार्किक होते हैं। दोनों का उचित उपयोग करने से वे अडोल बने रहते हैं, और फिर मस्तिष्क से=तर्क-भूमि से ऊपर उठकर आत्मा को साक्षात् भूमि में ला खड़ा करते हैं।

दूर से धुआँ देखकर मनुष्य अनुमान करता है कि वहाँ आग है। उतना जानने से उसे कोई लाभ नहीं। जब वहाँ जाकर आग को प्रत्यक्ष देखकर आग का यथायोग्य उपयोग करता है, तब लाभ होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य तर्क द्वारा प्रभु का ज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हें विशेष लाभ नहीं होता, जब वे अभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात् करते हैं तब आनन्द पाते हैं। उसके लिए हृदय और मस्तिष्क का व्यापार बन्द करना होता है, उसे बन्द करके ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुक्ति के अधिकारी

१००. नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥

—ऋ० १०।६३।४॥

जो (ज्योतीरथाः) ज्ञानरूपी ज्योतिर्मय रथ पर आरूढ़ हुए (अहिमायाः) अ-हीनशक्ति=कर्मकुशल महाबुद्धिमान् अतएव (अनागसः) निर्दोष, पापरहित मनुष्य (सु-अस्तये) जगत् की भद्र स्थिति के लिए, संसार के कल्याण के लिए, (दिवः) प्रकाशमय प्रभु के (वर्ष्म) सुखकारक धाम में (वसते) रहते हैं, अथवा अपने-आपको प्रभु की कृपा से आच्छादित करते हैं, वे (नृचक्षसः) मनुष्यमात्र को सुशिक्षा देनेवाले (अनिमिषन्तः) प्रमाद-आलस्य आदि से रहित, निर्निमेष होकर धारणाध्यान करने-वाले परम उत्साही (अर्हणा) योग्य (देवासः) सर्वस्व त्यागी विद्वान् (बृहत् अमृतत्वं) महान् मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

मुक्ति के अभिलाषियों को ज्ञान सम्पादन कर तदनुसार सत्कर्मों के अनुष्ठान से आत्मा को मल-विक्षेप-आवरणादि दोषों से रहित कर, शुद्ध बना, निःस्वार्थ और निष्काम भाव से लोकहित, जगत्कल्याण का अनुष्ठान, भगवान् का सतत प्रेम एवं श्रद्धा से ध्यान करना चाहिए। अपने-आपको सदा प्रभु की सुखमयी गोद में अनुभव करते हुए, जगज्जाल में फँसे प्राणियों को मुक्त कराने के लिए, उपदेश के द्वारा सदा उनके त्रिविध ताप का नाश करने का यत्न करते रहना चाहिए। प्रभुपुत्रों का कल्याण-साधन से अपना कल्याण स्वयमेव हो जाएगा।

१०१. महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥

—ऋ० ७।११।१॥

हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! तू (अध्वरस्य) मार्गप्रदर्शन का (महान्) बड़ा (प्रकेतः) उत्तम ज्ञापक अथवा अध्वरस्य=अहिंसामय मङ्गलकारी कार्यों का महान् (प्रकेतः) बोध देनेवाला (असि) है, (अमृताः) अमर जीवात्मा (त्वत् ऋते) तेरे विना (न मादयन्ते) आनन्द नहीं पाते। हे प्रभो ! आप (विश्वेभिः देवैः) सम्पूर्ण दिव्य शक्तियों के साथ (सरथं) समान स्थान में (आ याहि) सब प्रकार से व्यापक रूप से विराजते हैं। हे प्रभो ! (इह) हमारे इस सत्कर्म में तू ही हमारा (प्रथमः होता) मुख्य ऋत्विक् (नि सीद) हो, अथवा तू ही मुख्य ज्ञानी नि=नितरां सर्वथा सीद=दुःखादि का नाश करता है।

मुक्ति-प्राप्ति के लिए मनुष्य को सत्कर्मों का अनुष्ठान अत्यन्त आवश्यक है। प्रभु ने सर्गारम्भ में वेद द्वारा इन सत्कर्मों का बोध कराया है, और प्रत्येक समय हमारे अन्तःकरणों को स्फूर्तिविशेष द्वारा दुष्कर्मों से हटने तथा सत्कर्मों के करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की प्रेरणा करता रहता है। इस बात को 'महाँ अध्वरस्य प्रकेतः' में कहा है। संसार के प्रत्येक पदार्थ में भगवान् उसके समानस्थान होकर विराजमान हैं। हमारे सत्कर्मों का ऋत्विक् वही है। आनन्दस्वरूप मोक्ष, विना प्रभु के मिल नहीं सकता, अतः सदा-सर्वदा, प्रभु की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते रहना चाहिए, ध्यान-धारणा में प्रमाद न करना चाहिए।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

१०२. ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानशे।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥
१०३. य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिनन्दन् परिवत्सरे वलम्।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥
१०४. य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥
१०५. अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥

—ऋ० १०।६२।१-४॥

ये जिन महात्माओं ने (यज्ञेन) यज्ञ, देवपूजा=परमेश्वर-पूजा, संगतिकरण=विद्वत्सत्संग, दान=प्रत्येक पदार्थ से स्वत्व-त्यागपूर्वक ब्रह्मसत्त्वासंपादन से (दक्षिणया) दक्षिणा=दान=पुण्य से, कर्मों में कुशलता के द्वारा [कर्म के तीन प्रकार सम्भव हैं—कर्म, अकर्म और विकर्म। यजुः ४०।१-२ से विकर्म=उलटे कर्मों तथा अकर्म=न करने योग्य का निषेध है, शेष रहे कर्म, वे निष्काम कर्म ही हो सकते हैं, अतः कर्मों में कुशलता का तात्पर्य है निष्काम कर्मों में तत्परता] (इन्द्रस्य) अखण्डैश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा के (अमृतत्वं सख्यं) मोक्षरूप समान गुण को (आनशे) प्राप्त किया है ऐसे (सुमेधसः) उत्तमधारणावती बुद्धियुक्त (अङ्गिरसः) ज्ञानियो! (मानवं) मनुष्य-सम्बन्धी शरीर को (प्रति गृभ्णीत) लौटकर पुनः ग्रहण करो। (तेभ्यः वः) ऐसे तुम लोगों का (भद्रं अस्तु) कल्याण हो।

(ते पितरः) जिन वेदज्ञ=वेदवेत्ता विद्वानों ने (गोमयं) वाणीमय (वसु) धन (उद् आजन्) उत्तम रीति से प्राप्त किया है, करते हैं, तथा (गोमयं) पार्थिव (वसु) धन (उद् आजन्) फेंक दिया है, त्याग दिया है, देते हैं, और (ऋतेन) सृष्टिनियम-ज्ञान के द्वारा (परिवत्सरे) सर्वथा निवास करने योग्य मानवदेह में (वलं) आच्छादक अज्ञानान्धकार को (अभिन्दन्) तोड़ा, तोड़ते हैं, दूर करते हैं। हे (सुमेधसः) उत्तम संगतिवाले (अंगिरसः) प्राणशक्ति-सम्पन्न महात्माओ! (मानवं) मनुष्यदेह को (प्रति गृभ्णीत) फिर से ग्रहण करो, (वः) तुम्हारी (दीर्घायुत्वं) लम्बी आयु (अस्तु) हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ये) जिन्होंने (ऋतेन) ज्ञानपूर्वक नियमाचरण से (सूर्य) चराचर के आत्मा प्रभु को (दिवि) दिव्य गुणयुक्त मन में=हृदयाकाश में=ब्रह्मरन्ध्र में (अरोहयन्) प्राप्त किया, धारण किया और (मातरं) मान प्राप्त करनेवाली (पृथिवीं) वेदवाणी का (वि-अप्रथयन्) विशेष विस्तार किया अथवा जिन्होंने अपने तपों से पृथिवी माता की शान्तिस्थापनादि पुण्य कर्मों द्वारा विशेष प्रसिद्ध की। हे (सुमेधसः) पाप-वृत्तिनाशक (अंगिरसः) ज्ञानानन्दयुक्त महापुरुषो (मानवं प्रति गृभ्णीत) मनुष्यजन्म को पुनः ग्रहण करो, (वः) तुम्हारी (सुप्रजास्त्वं) उत्तम सन्तति, श्रेष्ठ शिष्यश्रेणी (अस्तु) हो।

(नाभा) सब संसार का बन्धु (अयं) ज्ञानवान् परमात्मा (वः) तुम्हारे (गृहे) अन्तःकरण में (वल्गु) मनोहर=मधुर (वदति) उपदेश करता है। हे (देवपुत्राः ऋषयः)परमात्मपुत्र ऋषियो!(तत्) परमात्मा के उस उपदेश को(शृणोतन)सुनो। हे (सुमेधसः) उत्तम मेधाशक्तिसम्पन्न श्रेष्ठ याज्ञिको! (अंगिरसः) ब्रह्मानन्द-प्राप्त महाशयो! (मानवं प्रति गृभ्णीत) पुनः मनुष्यशरीर ग्रहण करो, (वः) तुम्हें (सुब्रह्मण्यं) उत्तम वेदज्ञान (अस्तु) हो।

चारों मन्त्रों में प्रत्येक के अन्त में 'प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः' वाक्य आता है। इसमें 'प्रति' का अर्थ लौटकर या 'पुनः' किया है। लोक में भी यही अर्थ है, जैसे 'प्रत्यागच्छ'=लौटकर आया, या फिर आ। 'गृभ्णीत' तो है ही लोट् लकार का रूप, जिसका रूप, जिसका अर्थ विधि=आज्ञा तथा आशीर्वाद होता है। इस प्रकार 'प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः' का अर्थ विना किसी खींचातानी के 'लौटकर मनुष्यशरीर ग्रहण करो' सर्वथा संगत है।

इन मन्त्रों में प्रयुक्त 'अंगिरसः' पद का अर्थ हमने १. ज्ञानी २. प्राणशक्ति-सम्पन्न ३. ज्ञानानन्दयुक्त तथा ४. ब्रह्मानन्दप्राप्त किया है। इसमें प्रमाण 'तस्मा-दंगिरसोऽधीयानः' (गो० ब्रा०) अर्थात्=अंगिरस अधीयानः=ज्ञानी का नाम है; 'यो अंगिरसः स रसः' (गो० ब्रा०) जो अंगिरस है वह रस=आनन्द है, तथा 'प्राणो वा अंगिराः (शत०) प्राण का नाम अंगिरः=अंगिरस है।

'सुमेधसः' और 'अंगिरसः' शब्द बहुत विचारणीय हैं। ये अत्यन्त रहस्यमय शब्द हैं। ये मुक्तिप्राप्ति से पूर्व तथा मुक्ति से लौटने के पश्चात् की अवस्था द्योतित करते हैं।

प्रथम मन्त्र में दक्षिणा=कर्म को मुक्ति का साधन बतलाया है; ऋग्वेद १।१२५।६ में भी इसी भाव को कहा है, और बहुत स्पष्ट कहा है—'दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः' दक्षिणावाले=सुकर्म्मा लोग मोक्ष पाते हैं और दक्षिणावाले=उत्साही कर्मी आयु को दीर्घ करते हैं अर्थात् मौत को परे फेंकते हैं। यजुर्वेद के 'विद्या चाविद्यां च' मन्त्र में भी यही बात कही गई है।

'सूर्य्य' शब्द का अर्थ हमने 'चराचर का आत्मा' किया है। इसके लिए सन्ध्या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में आए उपस्थान मन्त्र में 'सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च [जगतः जंगम चर (च) और तस्थुषः=स्थावर अचर का आत्मा सूर्य कहलाता है] यह वाक्यप्रमाण है।

पृथिवी का अर्थ हमने वाणी किया है। जैमिनि ब्राह्मण में 'वगिति पृथिवी' उसका प्रमाण है।

चौथे मन्त्र में मुक्ति से लौटनेवालों को 'देवपुत्र'=परमात्मा के पुत्र कहा गया है। इसपर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। नाभा शब्द 'णह बन्धने' से बनता है।

'सुमेधसः' तथा 'अंगिरसः' शब्दों का भाव जब समझ लिया जाए तो १. भद्रं २. दीर्घायुत्वं, ३. सुप्रजास्त्वं तथा ४. सुब्रह्मण्यं का रहस्य समझने में कठिनता नहीं होती। मन्त्रों में यह शब्द इस क्रम से प्रयुक्त हुए हैं, और इसमें विशेषता है—पहले भद्रता=कल्याण, गुण-सम्पत्ति अर्जन की जाती है, तब दीर्घ आयु, उत्तम प्रजा=पुत्र-शिष्यादि की प्राप्ति होती है। इन सबका लक्ष्य सुब्रह्मण्य=उत्तम वेद-ज्ञान और उसके द्वारा मुक्तिप्राप्ति है। यदि दीर्घायुत्वं का अर्थ विपुल आय कर लें (आयु तथा आय का मूल धातु एक ही है) तो उपर्युक्त चारों शब्दों का अर्थ होता है—१. भद्रं=धर्म, २. दीर्घायुत्वं=आय=अर्थ, ३. सुप्रजास्त्वं=काम तथा ४. सुब्रह्मण्य=मोक्ष अर्थात् मुक्ति से लौटकर फिर उसी की प्राप्ति के लिए यत्नवान् होना चाहिए।

गृह शब्द का अर्थ हमने अन्तःकरण किया है 'गृह्णन्ति जानन्ति येन तत् गृहम्' जिसके द्वारा ग्रहण किया जाए, जाना जाए।

संस्कार

गर्भाधान

१०६. यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे॥ —अ० ६।१७।१॥

(यथा) जिस प्रकार (इयं पृथिवी मही) यह विस्तृत भूमि (भूतानां) प्राणियों के (गर्भं) गर्भ को (आदधे) भली प्रकार धारण करती है, (एव) उसी प्रकार (सवितवे अनुसूतुं) सन्तान को बिना कष्ट के उत्पन्न करने के लिए (ते गर्भः ध्रियतां) तेरा गर्भ धारित हो=स्थिर हो।

१०७. परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे।
मर्य्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे॥ —अ० ६।८१।२॥

हे (परिहस्त) पते! (गर्भाय धातवे) गर्भ धारण करने के लिए (योनि) पत्नी के गुह्य स्थान की (वि धारय) विशेष रक्षा कर। हे (मर्यादे) मनुष्य को पतिरूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में स्वीकार करनेवाली देवि, (त्वं) तू (पुत्रं) सन्तान को (आधेहि) धारण कर और (आगमे) उत्पत्ति का काल आने पर (तं) उस गर्भस्थ सन्तान को (आगमय) बाहर कर=उत्पन्न कर।

पति को 'परिहस्त'=सब प्रकार से हाथ देनेवाला, आश्रय देनेवाला कहा है। पत्नी को मर्यादा='सीमा में रहनेवाली' कहा है। ये शब्द विशेष अर्थयुक्त हैं।

पुंसुवन

१०८. **पुमांसं पुत्रं जनय पुमाननु जायताम्।**
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्॥ —अ० ३।२३।३॥

हे स्त्री! तू (पुमांसं पुत्रं जनय) बहादुर सन्तान को उत्पन्न कर, (तं अनु पुमान् जायताम्) उसके पश्चात् भी वीर ही पैदा हों, अथवा उसकी सन्तान भी वीर पैदा हों।(यान् जनयाः) जिनको तू पैदा करे, उनकी (च) और (जातानां पुत्राणां माता भवासि) उत्पन्न पुत्रों की माता हो।

मरियल, बीमार सन्तान उत्पन्न न हो, अपितु वीर, दुःखादि से बचानेवाली उत्पन्न होनी चाहिए। स्त्री, अपनी सन्तान की माता, मान्य, पूज्या हो। वेद ने यहाँ संकेत किया है कि यदि चाहते हो कि अनुकूल, अनुरक्त और भक्त सन्तान और मातापितृभक्त, धर्मवीर सन्तान पैदा हो, तो गर्भावस्था से ही वैसे आचारों-विचारों का संस्कार डालना चाहिए।

१०९. **यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।**
तैस्त्वं पुत्र विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव॥ —अ० ३।२३।४॥

(यानि ऋषभा) जो ऋषभ=सन्तानोत्पादक ओषधिएँ (भद्राणि बीजानि) उत्तम पुरुष-सन्तानों को (च जनयन्ति) अवश्य पैदा करती हैं, (तैः) उनसे (त्वं) तू (पुत्रं) सन्तान (विन्दस्व) प्राप्त कर। (सा) ऐसी तू (प्रसूः धेनुका) उत्तम सन्तान पैदा करनेवाली गौ के सदृश (भव) हो।

ऋषभ आदि ओषधियों के सेवन करने का उपदेश है, उनके सेवन से गर्भपातादि दोष नहीं होते।

११०. **शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्।**
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि॥ —अ० ६।११।१॥

(अश्वत्थः) परम वीर्यवान् इन्द्रिय-संयमी पुरुष (शमी) शान्त स्वभाववाली स्त्री पर (आरूढः) आरोहण कर चुका है, (तत् पुंसुवनं कृतं) उसके निमित्त पुंसवन कृत=संस्कार है (तत् वै पुत्रस्य वेदनं) वह सन्तानप्राप्ति का सूचक है। (तत्) उस संस्कार को हम (स्त्रीषु) स्त्रियों के लिए (आ भरामसि) भली प्रकार करते हैं।

पुंसवन संस्कार का सम्बन्ध स्त्रियों से है, और यह सन्तान होने का सूचक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहले भाग का अर्थ इस प्रकार भी होता है (अश्वत्थः) पीपल (शमीं) जण्डी वृक्ष पर (आरूढः) पैदा हुआ है, इसलिए पुंसवन संस्कार है। यज्ञ में जिन लकड़ियों से आग पैदा की जाती है, उनको 'अरणी' कहते हैं। वह पीपल की लकड़ी से बनाई जाती है, पीपल भी वह जो शमीं=जण्डी पर उत्पन्न हुआ हो, उससे अवश्य ही तेजस्वी अग्नि उत्पन्न होती है। इससे वेद यह संकेत करता है कि पुंसवन संस्कार का तात्पर्य अग्नि के समान तेजस्वी सन्तान उत्पन्न करना है।

सीमन्तोन्नयन

१११. राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥
—ऋ० २।३२।४॥

(अहं) मैं (राकां) दानशीला (सुहवां) सुमधुर वाणीवाली स्त्री को (सुष्टुती) सुन्दर स्तुतिवचनों से (हुवे) बुलाता हूँ, वह (सुभगा) सौभाग्यवती (नः शृणोतु) मेरे बुलावे को सुने और (त्मना) अपने मन से उसे (बोधतु) समझे। वह (अच्छिद्यमानया सूच्या) न टूटनेवाली सुई से (अपः) हमारे प्रजनन-कर्म को सीवे और (शतदायं) सैंकड़ों देनेवाली (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (वीर) वीर सन्तान (ददातु) देवे।

उत्तम सन्तान-प्राप्ति के लिए यह संस्कार किया जाता है।

जातकर्म

११२. वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सुतव उ॥
—अ० १।११।१॥

(पूषा) प्रजननविद्या-निपुण (अर्यमा) उप्पन्न बालक के रोगों को दूर करनेवाला (होता) ज्ञानी (वेधा) कुशल वैद्य (अस्मिन् सूतौ) इस प्रजनन-कार्य में (ते) तेरा (वषट् कृणोतु) कल्याण करे। (ऋतप्रजाता) सत्य वस्तु को उत्पन्न करनेवाली (नारी) (सिस्रतां) सुखपूर्वक गर्भमोचन करे (उ) और (सूतवै) उत्पत्ति के लिए (पर्वाणि) रुकावटें, गाँठें (विजिहतां) ढीली पड़ जाएँ।

११३. दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥ —ऋ० ५।७८।९॥

(दश मासान्) दस महीने (मातरि अधि) माँ के गर्भ में (शशयानः) रहता हुआ (कुमारः जीवः) सुकोमल जीव (जीवन्त्याः अधि) जीती हुई माता से (जीवः) जीता हुआ और (अक्षतः) नीरोग, अंग-भंगरहित (निः एतु) सुख से बाहर निकले।

उत्पत्ति के समय के कई क्लेशों का यहाँ वर्णन है। कई बार स्त्री प्रसवकाल में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मर जाती है, ता बच्चा ही मरा हुआ पैदा होता है, अथवा काणा, लूला, लँगड़ा, अन्धा या कुबड़ा या रोगी उत्पन्न होता है। ऐसा बालक उत्पन्न न हो, इसके लिए कुशल धाया की सहायता लेनी चाहिए।

यह संस्कार संसार में नवागत का स्वागत है।

नामकरण

११४. कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो
वीरैः सुपोषः पोषैः॥ —य० ७।२९॥

(कः असि) तू कौन है, अथवा तू सुखस्वरूप है, (कतमः असि) अनेकों में से तू कौन है, अथवा तू अत्यन्त सुख देनेवाला है, (कस्य असि) तू किसका है, अथवा तू आनन्दस्वरूप परमात्मा का है (कः नाम असि) तेरा नाम क्या है अर्थात् तू प्रसिद्ध सुखदाता है। (यस्य ते) जिस तेरा (नामः) नाम (अमन्महि) हम जानें। (भूः भुवः स्वः) सच्चिदानन्द परमेश्वर ! आपकी कृपा से (प्रजाभिः) अनेक सन्तानों से युक्त होकर (सुप्रजाः) उत्तम सन्तानवाला मैं (स्यां) होऊँ।(वीरैः सुवीरः) वीर सन्तानों के कारण उत्तम वीर और (पोषैः सुपोषः) उत्तम पोषण करनेवाले पुत्रादिकों से उत्तम पुष्टिमान् मैं बनूँ।

सन्तान हो तो वीर, पोषक, पालक हो।

निष्क्रमण

११५. शिवास्ते सन्त्वोषधय उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्य्याचन्द्रमसावुभा॥
—अ० ८।२।१५॥

हे बालक ! (त्वा) तुझको (अधरस्याः) नीचे से (उत्तरां पृथिवीं अभि) ऊपर की=बाहर की भूमि पर (उत् आहार्षं) बाहर लाया हूँ। (तत्र) उस भूमि में (आदित्यौ) प्रकाशयुक्त (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चाँद (उभौ) दोनों(अभि रक्षतां) तेरी पालना करते हैं और (ओषधयः ते शिवाः सन्तु) ओषधि-वनस्पति तेरे लिए सुखदायी होवें।

अन्नप्राशन

११६. यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि॥ —अ० ८।२।१९॥

हे बालक ! (यत् कृष्याः धान्यं) खेती से उत्पन्न अन्न जो कुछ (अश्नासि) तू

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खाता है,(यत् पयः) जो दूध (पिबसि) पीता है, (यत् आद्यं) जो भक्ष्य है और (यत्) जो (अनाद्यं) खाने योग्य नहीं है, उस (सर्वं) सबको (ते) तेरे लिए (अविषं) विष-रहित=आरोग्यप्रद (कृणोमि) करता हूँ।

अन्न और दूध मनुष्य का भोजन है। माता-पिता इस बात को सदा ध्यान रखें कि उनकी सन्तान विषैला=रोगोत्पादक पदार्थ न खाए।

मुण्डन

११७. अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ अ० ६।६८।२॥

(आपः) जल (वर्चसा) वेग से केशों को (उन्दन्तु) गीला करते हैं और (अदितिः) अखण्डित तीक्ष्ण छुरा (श्मश्रु) केशों को (वपतु) काटे। (प्रजापतिः) पिता (दीर्घायुत्वाय चक्षसे) चिरकाल तक जीने और देखने के लिए (चिकित्सतु) देख-भाल रखे अथवा रोग दूर करे।

कर्णवेध

११८. लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु॥ —अ० ६।१४१।२॥

(लोहितेन स्वधितिना) लोहे के या धातु के शस्त्र से (कर्णयोः मिथुनं) कानों के जोड़े=दोनों कानों को (कृधि) छेद, इस कर्म को (अश्विना) वैद्य या माता-पिता (अकर्त्ताम्) करें। (तत्) यह कर्म (प्रजया) प्रजा के लिए (बहु लक्ष्म) बहुत शोभा-दायक हो।

उपनयन

११९. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥
—अ० ११।५।३॥

(उपनयमानः) उपनयन करानेवाला (आचार्यः) आचार्य (ब्रह्मचारिणं) ब्रह्मचारी को (गर्भं अन्तः) गर्भ में=मानो अपने अन्दर (कृणुते) करता है, (तं) उसको (तिस्रः रात्रीः) तीन रात तक (उदरे बिभर्ति) मानो अपने पेट में धारण करता है, (तं जातं) विद्या समाप्त कर पुनः पैदा हुए को (द्रष्टुं)देखने के लिए (देवाः)विद्वान् (अभि संयन्ति) सब ओर से आते हैं।

ब्रह्मचारी को गर्भ में करने के दो अर्थ हैं, एक तो आचार्य उसे अपना अन्तरंग बनाकर अपने कुल का सदस्य बना लेता है, दूसरा उसे विद्या में प्रवेश कराता है। तीन रात्रि से यहाँ काल अभिप्रेत नहीं। रात्रि का अर्थ सुख तथा उसके रक्षण के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधन हैं । वे ज्ञान, कर्म और उपासना हैं; गुरु इनके सम्यग् बोध होने पर्यन्त शिष्य को अपने पास रखता है । अथवा, रात्रि का अर्थ अन्धकार करें तो आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक अन्धकार क्लेश से बचने का उपदेश करता है । जब ब्रह्मचारी विद्याव्रतस्नातक होकर लौटता है, तो सब सम्बन्धी आप्तजन उसका समादर सत्कार करने को आते हैं ।

समावर्त्तन

१२०. ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान् संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥
—अ० ११।५।६॥

(समिधा समिद्धः) ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त (कार्ष्णं वसानः) कृष्ण मृगचर्म्म धारण करता हुआ (दीक्षितः) व्रतों के अनुसार आचरण करनेवाला (दीर्घश्मश्रुः) लम्बे बालोंवाला (ब्रह्मचारी एति) ब्रह्मचारी आता है । (सः लोकान् संगृभ्य) वह लोक-संग्रह करके (मुहुः)बार-बार (आचरिक्रत्)लोगों को उत्साह देता है और वह(सद्यः) उसके पश्चात् (पूर्वस्मात्) पूर्वाश्रम से (उत्तरं समुद्रं) दूसरे आश्रमरूप समुद्र को (एति) प्राप्त होता है ।

१२१. युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥
—ऋ० ३।८।४॥

जो (परिवीतः) यज्ञोपवीतधारी, सब प्रकार की विद्या-शिक्षा में निष्णात (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रधारी (युवा) जवान (आगात्) ब्रह्मचर्याश्रम से गृहाश्रम को प्राप्त होता है, (सः) वह (जायमानः) विद्यारूप द्वितीय जन्म से प्रख्यात होता हुआ (श्रेयान् उ भवति) अतिशय मंगलमय ही होता है । (स्वाध्यः) श्रेष्ठ ध्यानी (मनसा देवयन्तः) हृदय से दिव्य गुणों की कामना करनेवाले (धीरासः) धृतिशील(कवयः) दूरदर्शी ज्ञानी (तं उन्नयन्ति) उसको ऊपर उठाते हैं ।

विवाह

१२२. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ —अ० ११॥५।१८॥

(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से युक्त (कन्या) कुमारी (युवानं) ब्रह्मचर्यसम्पन्न युवा को (पतिं विन्दते) पति प्राप्त करती है । (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य की शक्ति से (अनड्वान्) वृषसंज्ञक पुरुष और (अश्वः) अश्वनामक पुरुष (घासं जिगीर्षति) भोग्य पदार्थों का उपभोग करता है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अश्व और अनड्वान् के अर्थों के लिए वात्स्यायन-प्रणीत कामशास्त्र देखिए।

युवा पुरुष और युवती का विवाह होना चाहिए। विवाह से पूर्व दोनों ब्रह्मचारी हों।

१२३. गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥
—अ० १४।१।५०॥

हे देवि ! (यथा) जिससे तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (जरदष्टिः) वृद्धावस्था को (असः) प्राप्त हो, इसलिए (सौभगत्वाय) सौभाग्य वृत्ति के लिए(ते हस्तं गृभ्णामि) तेरा पाणिग्रहण करता हूँ। (भगः) ऐश्वर्यसम्पन्न नेता, (अर्यमा) न्यायाध्यक्ष, (सविता) शासक अथवा सत्कर्म-प्रेरक गुरु और (पुरन्धिः) नगररक्षक तथा (देवाः) उपस्थित धर्मात्मा लोग (त्वा) तुझको (गार्हपत्याय) गृहस्थ-पालन के लिए (मह्यं अदुः) मेरे हवाले करते हैं।

मन्त्र के उत्तरार्द्ध पर विचारने से प्रतीत होता है कि विवाह के समय नगर के प्रतिष्ठित सज्जन तथा न्यायविभाग का कोई प्रतिनिधि होने चाहिएँ। न्यायविभाग के प्रतिनिधि की उपस्थिति विवाहों के रजिस्टर्ड कराने की ध्वनि दे रही है। स्वाध्यायशील सज्जन इसपर विचार करें।

१२४. भगस्ते हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥ —अ०१४।१।५१

(भगः) मैं ऐश्वर्य-सम्पन्न (ते हस्तं अग्रहीत्) पाणिग्रहण करता हूँ। मैं(सविता) सत्कर्मी (ते हस्तं अग्रहीत्) तेरा हाथ पकड़ता हूँ। (त्व) तू मेरी (धर्मणा पत्नी असि) धर्मपत्नी है और (अहं) मैं (तव गृहपतिः) तेरा गृहस्वामी हूँ।

१२५. ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥ —अ० १४।१।५२॥

(इयं) यह स्त्री (मम पोष्या अस्तु) मेरी पोष्य=पालनीय है, अर्थात् मैं पति इसके पालन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।(बृहस्पतिः) पुरोहित ने (त्वा) तुझे(मह्यं अदात्) मेरे लिए दिया है।(मया पत्या प्रजावति) मुझ पति से सन्तानयुक्त देवि ! (शरदः शतं संजीव) सौ वर्ष तक कल्याणपूर्वक जीती रहो।

पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी को अन्न-वस्त्रादि से प्रसन्न रखे।

१२६. उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा॥ —अ० १४।२।५२॥

(उशतीः) विवाह की कामना करती हुई (इमाः) ये (कन्यलाः) दुलारी कन्याएँ (पितृलोकात्) बाप के घर से (पतिं) पति को (यतीः) प्राप्त होती हुई (दीक्षां) व्रत को (अव असृक्षत) धारण करे अथवा छोड़े।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दीक्षाधारण=पतिव्रता रहना।

दीक्षा छोड़ना=गृहाश्रम में आकर ब्रह्मचर्य के कई नियम त्यागने होते हैं।

प्रसंग में 'पितृलोक' शब्दपर भी विचार कीजिए। जो लोग 'पितृलोक' से मरे पितरों का वासस्थान समझते हैं, वे इस मन्त्र को ध्यान से मनन करें।

१२७. ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु॥ —अ० १४।२।७३॥

(ये वधूदर्शाः पितरः) जो वधूदर्शी पिता आदि सम्बन्धी (इमं वहतुं आगमन्) इस विवाह में आये हैं, (ते) वे (अस्यै वध्वै संपत्न्यै)इस वधू साध्वी पत्नी को(प्रजावत् शर्म यच्छन्तु) संतान-सम्बन्धी सुखकारक आशीर्वाद दें, अथवा सन्तान की भाँति सुख दें, अथवा सन्तान की भाँति घर दें।

इस मन्त्र में विवाह में बरातियों का संकेत प्रतीत होता है। वर पक्ष के लोग वधू को खूब समादर और प्रीति से स्वसन्तान की भाँति सुखादि देवें।

१२८. सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता॥ —अ० २।३०।२॥

हे (अश्विनौ) पति-पत्नी ! तुम दोनों (चेत्) यदि (कामिनौ) एक-दूसरे की कामना करते हुए (सं नयाथः) समान नीति का वर्ताव करोगे (च) और (संवक्षथः) समान व्यवहार करोगे, तो (भगासः) सब कल्याण (वां) तुम दोनों को (सं अग्मत) एक-से प्राप्त होंगे। तुम दोनों के (चित्तानि) चित्त (सं) एक-से रहेंगे (उ) और (व्रता) व्रत-व्यवहार-आचार भी (सं) एक-से होंगे।

घर में सुख-शान्ति तभी हो सकती है, जब पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार छल-छिद्ररहित हो।

विवाह का प्रयोजन

१२९. एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम्॥ —अ० २।३०।५॥

(इयं) यह स्त्री (पतिकामा) पति की अभिलाषा से (आअगन्) आई है और (अहं) मैं (जनिकामः) सन्तानाभिलाषी(आगमम्)आया हूँ। यथा(कनिक्रदद् अश्वः) गर्जन करता हुआ मेघ भूमि को प्राप्त होता है, तद्वत् (भगेन सह) ऐश्वर्य के साथ (अहं आगमम्) मैं आया हूँ।

विवाह का प्रयोजन केवल सन्तान है।

एक काल में एकपति—एक पत्नी

१३०. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥ —ऋ० १०।८५।४२॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तुम दोनों पति-पत्नी (इह एव स्तं) यहाँ ही=घर में रहो, (मा वि यौष्टं) एक-दूसरे से पृथक् मत होवो, (पुत्रैः) पुत्रों तथा (नप्तृभिः) पौत्रों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुए (स्वे गृहे मोदमानौ) अपने घर में आनन्द से रहते हुए तुम दोनों (विश्वं आयुः विअश्नुतं) पूर्ण आयु प्राप्त करो।

इस मन्त्र में 'स्तं' 'यौष्टं' 'अश्नुतं' 'क्रीडन्तौ' 'मोदमानौ' ये सारे शब्द द्विवचनान्त हैं, जो बतला रहे हैं कि एक काल में एक ही पति और एक ही पत्नी होनी चाहिए, अन्यथा यह द्विवचन व्यर्थ हो जाएगा।

वानप्रस्थ

१३१. आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महांत्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम्॥

—अ० ६।५।१॥

हे भद्र (आ नय) ले-आ=अर्थात् अपने मन को इस तृतीय आश्रम की ओर ले आ। (सुकृतां लोकं) पुण्यात्माओं के देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर। (प्रजानन्) अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार जानते हुए आप इस वानप्रस्थाश्रम को (अपि) भी (गच्छतु) प्राप्त हूजिए। (बहुधा) नाना प्रकार के (महांति तमांसि) बड़े-बड़े अन्धकारों=गृहस्थाश्रमस्थ दुःखादि को (तीर्त्वा) पार करके (अजः) उन्नतिशील, गतिशील, ज्ञानशील, त्यागशील तू (तृतीयं) तीसरे (नाकं) दुःख-रहित आश्रम पर (आरोह) आरूढ हो।

संन्यास

१३२. अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो ऽ अहम्॥ —य० २०।२४॥

हे (व्रतपते) व्रतों की रक्षा करनेवाले! (अग्ने) आगे ले-जानेवाले प्रभो! मैं (समिधं) समिधा=अग्निहोत्रादि उपकरणों को (त्वयि) तुझमें (अभिआदधामि) सर्वथा धारण करता हूँ, मैं (व्रतं च श्रद्धां च) व्रत और श्रद्धा को (उपएमि) प्राप्त होता हूँ, (अहं) मैं (दीक्षितः) दीक्षाप्राप्त संन्यासी (त्वा) तुझको अपने हृदय में (इन्धे) प्रदीप्त करता हूँ।

संन्यासी अग्निहोत्रादि कर्म त्यागकर, श्रद्धाव्रतादि से सम्पन्न होकर अपने हृदय-मन्दिर में सदा परमात्मा का साक्षात् करे।

अन्त्येष्टि

१३३. वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर॥ —यजु० ४०।१५॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे (क्रतो) कर्मशील जीव ! तू शरीरत्याग के समय (ओं) परमात्मा को (स्मर) स्मरण कर, (क्लिवे स्मर) सामर्थ्यप्राप्ति के लिए स्मरण कर, (कृतं स्मर) अपने किये कर्मों को स्मरण कर।(वायुः) प्राणवायु (अमृतं अनिलं)अविनाशी सूक्ष्म शरीर को प्राप्त हो जाता है (अथ) और (इदं शरीरं) यह प्रत्यक्ष दिखनेवाला स्थूल शरीर (भस्मान्तं) भस्म से अन्त होनेवाला है।

१३४. सूर्यचक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ —अ० ११।८।३१॥

(पुरुषस्य चक्षुः सूर्यः) पुरुष की नेत्रशक्ति को सूर्य और (प्राणं वातः विभेजिरे) प्राण को वायु विभक्त कर लेते हैं। (अथ) इसके पश्चात् (अस्य) पुरुष के (इतरं आत्मानं) दूसरे स्थूल देह को (देवाः) विद्वान् (अग्नये प्रायच्छन्) अग्नि के हवाले करते हैं, अर्थात् जला देते हैं।

पंचमहायज्ञ

ब्रह्मयज्ञ=सन्ध्या

१३५. नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ —अ० १०।७।३१॥

(यः) जो (अजः) प्रगतिशील आत्मा (उषसः पुरा)उषःकाल से पूर्व तथा (सूर्यात्पुरा) सूर्यास्त से पूर्व (नाम) नमस्कार करने योग्य प्रभु को (नाम्ना) ओंकार आदि नामों से (जोहवीति) स्मरण करता है (सः अजः) वह महात्मा (तत् स्वराज्यं इयाय) उस स्वराज्य को प्राप्त करता है, (यस्मात् परं अन्यत् भूतं न अस्ति) जिस से श्रेष्ठ दूसरा कोई पदार्थ नहीं है और (यत् प्रथमं संबूभव) जो स्वराज्य पहले भी था, अथवा जो सबसे मुख्य है।

भगवद्भक्त लोग स्वराज्य=आतमराज्य=मुक्ति के अधिकारी होते हैं। मुक्ति से बढ़कर जीवात्मा के लिए कोई भी वस्तु नहीं है, यह मुक्ति जीव को पहले भी प्राप्त थी।

'सूर्यात् पुरा' का अर्थ हमने 'सूर्यास्त से पूर्व' किया है, सूर्य से पूर्व नहीं किया, क्योंकि उस भाव को 'उषसः पुरा' ने व्यक्त कर दिया है। इस प्रकार इस मन्त्र ने प्रातः और सायं दो समय सन्ध्योपासना के लिए विधान किये हैं।

उपासना का स्थान

१३६. उपह्वरे गिरीणाँ संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो ऽ अजायत ॥ —य० २६।१५॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य (गिरीणां उपह्वरे) पर्वतों के निकट अथवा गुहाओं में (च)और(नदीनां संगमे) नदियों के संगम पर (धिया) ध्यान करने से (विप्रः) परममेधावी(अजायत) होता है।

ध्यान-उपासना एकान्त-प्रशान्त स्थान में करनी चाहिए। एकान्त स्थान में जाने से मनुष्य का अन्तःकरण वैसे ही स्वच्छ होने लगता है। परमात्मा का ध्यान करने से तो उसके कहने ही क्या हैं!

देवयज्ञ=अग्निहोत्र

१३७. सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥
—अ० १९।५५।३॥

(गृहपतिः अग्निः) घर आदि की रक्षा करनेवाला यह अग्नि (सायं सायं)प्रत्येक सायं और (प्रातः प्रातः) हर प्रातः (नः) हमें (सौमनसस्य) सुखशान्ति का (दाता) देनेवाला हो, (वसोः वसोः वसुदानः) प्रत्येक श्रेष्ठ धनादि का दाता (एधि) होवे। (वयं) हम सब (त्वा इन्धानाः) इस अग्नि को प्रदीप्त करते हुए (तन्वं पुषेम) शरीर-वृद्धि करें।

अग्निहोत्र से रोगनाश

१३८. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥
—अ० ३।११।१॥

हे मनुष्य! (त्वा)तुझको (कं जीवनाय)सुखपूर्वक जीने के लिए (हविषा)हविः=हवन-सामग्री के द्वारा अर्थात् अग्निहोत्र के द्वारा (अज्ञात यक्ष्मात्) अज्ञातयक्ष्मा से (उत) और (राजयक्ष्मात्) राजयक्ष्मा से (मुंचामि) छुड़ाता हूँ (यदि एनं) यदि इसको (एतत्) प्रसिद्ध (ग्राहिः) न छोड़नेवाले गंठयादि रोगों ने (जग्राह)पकड़ रखा है, (तस्याः) उस ग्राहि से (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि अथवा वायु और सूर्य (प्र मुमुक्तं) छुड़ाए।

यक्ष्मा=तपेदिक की उसी अवस्था को जिसमें बीमारी का ठीक-ठीक पता न चले, अज्ञातयक्ष्मा कहते हैं। जब वह अपने पूर्णवेग पर हो, तब उसे राजयक्ष्मा कहते हैं। ये दोनों हवन से साध्य हैं। आज इस सिद्धान्त को बड़े-बड़े डॉक्टरों ने भी स्वीकार कर लिया है।

पितृयज्ञ

१३९. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ —य० २।३४॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ऊर्जं) पराक्रम, अन्न, रस आदि को (वहन्तीः) प्राप्त करानेवाला जल (अमृतं) जीवनप्रद उत्तम अन्न (घृतं) घी (पयः) दूध (कीलालं) उत्तम मधु और (परिस्रुतं) स्वयं पककर गिरे हुए फलादि पदार्थ (मे पितॄन्) मेरे पितरों=पिता, माता, पितामह, गुरु आदि को (तर्पयत) तृप्त करें और (स्वधाः स्थ) उनको स्व-शक्ति-संपन्न करें।

उत्तमोत्तम पदार्थों से अपने बड़ों का सत्कार करना चाहिए, जिससे उनका शरीरारोग्यादि बना रहे।

बलिवैश्वदेव यज्ञ

१४०. अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने।

—अ० १९।५५।६॥

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम॥

—अ० १९।५५।१॥

(अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! हम (ते) तेरे आदेश से (इव) जिस प्रकार (तिष्ठते अश्वाय) उपकारी अश्वादि पशुओं को, चाहे वे ठहरें हों या काम पर हों (घासं) घास देते हैं, उस भाँति (अहः अहः इत्) प्रतिदिन ही (बलिं हरन्तः) सब प्राणियों के प्रति बलि=भोज्य पदार्थ देते हुए (रायःपोषेण) धनवृद्धि के द्वारा, चक्रवर्त्तिराजलक्ष्मी से (समिषा) शुद्ध इच्छा और सम्यग् ज्ञान से (मदन्तः) आनन्दित होते हुए, (अग्ने) हे सन्मार्ग-प्रदर्शक प्रभो! (ते) तेरे शासन में रहते हुए हम (प्रतिवेशाः) पड़ोसीजन (मा रिषाम) एक-दूसरे को क्लेश न दें।

जो मनुष्य सर्वभूत हितकामना से प्रेरित होकर प्राणिमात्र को भाग देता है, वह कैसे किसी को क्लेश देगा? वह सर्वमित्र अत्यन्त आनन्दित रहता है, क्योंकि उससे द्वेष करनेवाला कोई भी प्राणी नहीं।

अतिथियज्ञ

१४१. तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

१४२. स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं
व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा
ते वशस्तथास्तु व्रात्या यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥२॥

—अथर्व० १५।११॥

(तत्) तो (यस्य गृहान्) जिसके घर में (एवं विद्वान्) इस प्रकार का विद्वान् (व्रात्यः) सत्यभाषण व परहित-कामनादि व्रतों से भूषित (अतिथिः) सदैव भ्रमण करके जनता को सत्यज्ञान प्राप्त करानेवाला अतिथि महात्मा (आगच्छेत्) आ जाए तो गृहपति (स्वयं) आप (अभ्युदेत्य) उठकर, स्वागत करता हुआ (ब्रूयात्) कहे—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे (व्रात्य) उत्तम व्रतधारिन् ! (क्व अवात्सीः) आप पहले कहाँ रहे ? (व्रात्य) परोपकारादि सन्नियमों से भूषित भगवन् ! (उदकं) लीजिए, यह जल है। हे (व्रात्य) लोगों को व्रतोपदेश करनेवाले धर्म्मात्मन् ! मेरे समस्त पदार्थ (तर्प्पयन्तु) आपको तृप्त करें। (व्रात्य) हे सब प्राणियों पर प्रेम करनेवाले गुरो ! (यथा ते प्रियं) जो आपको अच्छा लगे (तथा अस्तु) वैसा हो अर्थात् किया जाए। (व्रात्य) हे कामनीय स्वभाववाले कृपालो ! (यथा ते वशः) जैसे आपकी आज्ञा हो (तथा अस्तु) वैसा ही होगा। (व्रात्य) सत्कामना-संपन्न विद्वन् ! (यथा ते निकामः) जैसे आपकी इच्छा हो (तथा अस्तु) वैसा ही किया जाए।

इससे पूर्व के अथर्व-सूक्तों में अतिथि की गुणावलि का निरूपण है। परम विद्वान्, धार्मिक, सतत परोपकारी, जनहितकारी, स्वार्थत्यागी, ईश्वरभक्त, वेदानुरक्त ज्ञानी का नाम अतिथि है। ऐसे सज्जन की अन्न-वस्त्रादि से पूजा करनी चाहिए। उसे किसी वस्तु की अनुपपत्ति=कमी न रहनी चाहिए, ताकि वह निश्चिन्त होकर सदा धर्मप्रचार, विद्याविस्तार आदि परोपकार के कार्यों में लगा रहे।

वेदानुयायी की कामना

१४३. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ —यजु० २२। २२॥

हे (ब्रह्मन्) सर्वतो महन् भगवन् ! (राष्ट्रे) हमारे राष्ट्र में (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (आ) सब ओर वा सब प्रकार से (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मतेजोयुक्त, ज्ञानदीप्ति से प्रदीप्त, तपःपुञ्ज (जायतां) हो। (इषव्यः) बाणविद्या तथा शस्त्रास्त्र-प्रयोग में सुनिपुण (अतिव्याधी) स्वयं निष्कम्प होकर शत्रुओं को अत्यन्त विचलित करनेवाला (महारथः) महारथी (जायतां) हो। (अस्य यजमानस्य) इस यजमान की (धेनुः) गौ (दोग्ध्री) दूध देनेवाली हो, (अनड्वान्) बैल (वोढा) भार उठाने में समर्थ हो, (सप्तिः) घोड़ा (आशुः) शीघ्रगामी हो, (योषा) स्त्री (पुरंधिः) अत्यन्त बुद्धिमती अथवा नगर-नेत्री हो। (रथेष्ठाः) रथी (जिष्णुः) जयशील हो और (युवा) जवान (वीरः) वीर और (सभेयः) सभा में बैठने योग्य (जायतां) हो। (नः निकामे निकामे) हमारे अभिलषित समय पर (पर्जन्यो वर्षतु) बादल बरसे। (नः) हमारी (ओषधयः) ओषधियाँ (फलवत्यः) फलवाली (पच्यन्तां) पकें और (नः) हमारा (योगक्षेमः) योगक्षेम (कल्पताम्) ठीक रहे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कितना भव्य आदर्श है ! राष्ट्र-देश-समाज के अभ्युदय के लिए कैसी उदात्त कामना है ! इससे सुन्दर आदर्श उत्कृष्ट भावना, उच्च कामना अन्यत्र नहीं मिलती।

१४४. रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचँ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ —य० १८।४८॥

हे प्रभो ! (नः) हमें (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में या ब्राह्मणों के सम्बन्ध में (रुचं) प्रीति, कान्ति (धेहि) दे, (राजसु) क्षत्रियों पर (नः रुचं) हमारा प्रेम (कृधि) कर। (विश्येषु शूद्रेषु रुचं) वैश्यों और शूद्रों में प्रीति दे, (रुचा) उस प्रेम से उत्पन्न (रुचं) कान्ति (मयि धेहि) मुझमें धारण कराइये।

१४५. प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ अ० १९।६२।१॥

हे परमात्मन् ! (देवेषु मा प्रियं कृणु) विद्वानों में मुझे प्रिय बनाओ और (राजसु मा प्रियं कृणु) क्षत्रियों में मुझे प्रीतिपात्र करो (उत) और (शूद्रे) शूद्रों में (उत) और (आर्ये) वैश्यों में (प्रियं) प्रिय बनाओ। इतना ही नहीं, अपितु (सर्वस्य पश्यतः) सब देखनेवाले=चेतनमात्र का प्यारा बनाओ।

इन दो मन्त्रों पर विचारिए। वेद किसी एक वर्ण या मनुष्य-संघ की प्रीति-प्राप्ति का उपदेश नहीं करता, अपितु मनुष्यमात्र की प्रीति के लाभ के लिए उपदेश करता है। वेद का प्रेम मनुष्यों तक जाकर नहीं रुका, वरन् उससे आगे निकलकर प्राणिमात्र तक जाता है।

सबकी कल्याण-कामना

१४६. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥
—अ० १।३१।४॥

(नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारी माता और पिता का कल्याण हो। (गोभ्यः) गौओं का (जगते) जंगम प्राणियों का तथा (पुरुषेभ्यः) मनुष्यों का (स्वस्ति) कल्याण हो। (विश्वं) यह समस्त संसार (नः) हमारे लिए (सु-भूतं) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त तथा (सु-विदत्रं) श्रेष्ठ ज्ञानप्रद (अस्तु) हो। (ज्योग् एव) चिरकाल तक (सूर्यं दृशेम) सूर्य को देखते रहें अर्थात् चिरकाल तक जीते रहें।

१४७. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ —ऋ० ५।५१।१५॥

(सूर्याचन्द्रमसौ-इव) सूर्य और चन्द्र की भाँति अथवा स्वतःप्रकाश और परतः-प्रकाश लोकों की तरह हम (स्वस्ति) कल्याणमय (पन्थां) मार्ग का (अनुचरेम)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुसरण करें=चलें, (पुनः) और उसके लिए (ददता) दानशील, (अघ्नता) हिंसा न करनेवाले, किसी का अधिकार न छीननेवाले (जानता) ज्ञानी की (संगं) संगति (ईमहे) प्राप्त करें।

सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार नियमित रहते हैं, मनुष्य को भी वैसा ही नियम-बद्ध होना चाहिए। सूर्य-चन्द्र के अनियमित होने का फल जगत्प्रलय है। मनुष्य के नियमरहित होने का परिणाम मनुष्य-समाज का ह्रास और नाश है। सूर्य और चन्द्र का अपना कोई प्रयोजन नहीं, कोई स्वार्थ नहीं। केवल दूसरों को प्रकाश देना, जीवन देना ही इनका कार्य है, इसी कारण इनकी बड़ाई है। जो मनुष्य स्वार्थरहित होकर, केवल शुद्ध परोपकार की सद्भावना से प्रेरित होकर लोकहित-कार्यों में लगता है, उसका बड़ा मान होता है। इस कल्याण-पथ पर दृढ़ रहने के लिए निरन्तर सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग भी उनका, जो दानी हों, देना ही जिनका व्रत हो, जो किसी का हक न मारते हों, और जो श्रेष्ठ ज्ञानी हों।

एकता

१४८. संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ —ऋ० १०।१९१।१॥

हे (वृषन्) बलवन् (अर्य) स्वामिन्! (अग्ने) तेजस्विन् ज्ञानस्वरूप प्रभो! (विश्वानि) सब पदार्थों को (आ) सब ओर से, सब प्रकार से (सं) एकत्रित करके (सं-युवसे) एक-सा या भली प्रकार सम्मिलित करते हो, अथवा समान रीति से पृथक् करते हो। आप (इडः पदे) स्तुति से प्राप्तव्य अवस्था में (सं-इध्यसे) एक रस प्रकाशित होते हो। (सः) ऐसा तू (नः) हमें (वसूनि) सब प्रकार के धन, वास आदि (आ भर) दे।

प्रभु ही सारे पदार्थों का योग्यरीति से संश्लेषण और विश्लेषण करते हैं, अतः वे सबको धनादि दे सकते हैं।

१४९. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

—ऋ० १०।१९१।२॥

हे मनुष्यो! तुम सब (सं) एक होकर (गच्छध्वं) गति करो, आचरण करो, (सं वदध्वं) एक-सा बोलो (वः जानतां मनांसि) तुम ज्ञानियों के मन (सं) एक प्रकार के हों। तुम उसी प्रकार व्यवहार करो (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे) पदज्ञ=वेदज्ञ पुरातन (सं-जानाः) समीचीन उत्तम ज्ञानवाले (देवाः) विद्वान् महात्मा (भागं उप आसते) अपने भाग को करते हैं, अथवा भजनीय परमात्मा की उपासना करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्यों की गति=आचरण एक-सा होना चाहिए, कोई भेद-भाव न होना चाहिए, उसका उपाय है एक-सा उच्चारण=बोल, अर्थात् उनकी भाषा एक हो, वचन एक हों; वह तभी हो सकता है, जब मनुष्यों के मन एक-से हों, और वह तभी सम्भव है, जब मनुष्य ज्ञानी हों। व्यक्ति-भेद के कारण हमारी रुचियों में भेद होना स्वाभाविक है। यहाँ इस भेद के विषय में कुछ नहीं कह रहे; यहाँ केवल इस उपाय की चर्चा है, जिससे मानव-समाज में समानता रहे; वह तभी हो सकता है जब मनुष्यों के मन, वचन तथा कर्म समान हों।

१५०. समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

—ऋ० १०।१६१।३॥

प्रभु का उपदेश है—हे मनुष्यो! (एषां) इन तुम लोगों का (मन्त्रः) विचार, वेद, तथा गुरुमन्त्रः (समान) एक ही है, (समितिः समानी) सभा एक है, (मनः सह चित्तं समानं) मन के साथ चेतना भी समान है। (वः) तुम सबको (समानं मन्त्रं अभिमन्त्रये) समान मन्त्र=वेद, विचार से अभिमन्त्रित करता हूँ, मन्त्रवान् करता हूँ। (वः) तुम सबको (समानेन हविषा) समान प्रकार के अन्नादि उपभोग (जुहोमि) देता हूँ।

सब मनुष्यों के विचार यदि एक-से हो जाएँ, तो जगत् से अशान्ति सर्वथा दूर हो जाए। सब मनुष्यों की एक सभा होनी चाहिए, अर्थात् सभा में जाने का अधिकार सबको है। प्रभु कहते हैं, तुम्हारी बुद्धियों के परिष्कार, तथा तुम्हारे उद्धार के लिए मैंने तुम्हें वेदज्ञान दिया है, उसमें तुम सबको समान अधिकार है। मनुष्यमात्र की उपभोग-सामग्री भी एक-जैसी दी है, किन्तु मनुष्य अपने मतिभेद, कुरुचि, कुकर्म आदि के कारण उसमें भेद उत्पन्न कर देते हैं।

१५१. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ —ऋ० १०।१९१।४

(वः आकूतिः) तुम्हारा लक्ष्य, संकल्प (समानी) एक-सा हो, (वः मनः) तुम्हारा मन=मस्तिष्क=विचार-सामर्थ्य (समानं अस्तु) एक-सा होना चाहिए, (यथा) जिससे (वः सहः) तुम्हारा सामर्थ्य=बल (सु असति) उत्तम हो।

यदि उत्तम शक्ति प्राप्त करना चाहो, तो तुम सब अपने ध्येय एक-से बनाओ, तुम सबका लक्ष्य=उद्देश्य एक हो, उसके लिए तुम्हें अपने मनों को एक-सा करना होगा, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, वैर-वैमनस्य हटाना होगा, वह तभी हो सकता है जब तुम्हारे मन=विचार एक-से हों।

ये चारों मन्त्र ऋग्वेद के अन्त में है। विविध पदार्थों का स्वरूप निरूपण करके अन्त में इस ज्ञान का उद्देश्य भी वेद ने बता दिया। ज्ञान का फल मानव-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाज की शक्तिवृद्धि, तथा परस्पर प्रीति एवं समानता का व्यवहार होना चाहिए। इन मन्त्रों का मनन कर आत्मकल्याण का प्रयत्न करना चाहिए।

पारिवारिक व्यवहार

१५२. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।। —अ० ३।३०।१।।

हे मनुष्यो ! (वः) तुम सबकी परस्पर (सहृदयं) समानहृदयता (सांमनस्यं) एक-सी मनोऽवस्था तथा (अविद्वेषं) द्वेषाभाव=प्रीति (कृणोमि) करता हूँ (अन्यो अन्यं) एक-दूसरे को तुम (अभिहर्यत) ऐसा चाहो, (इव) जैसे (अघ्न्या) गौ (जातं वत्सं) अपने नये बछड़े को चाहती है।

गौ का अपने बछड़े पर स्वार्थरहित, निष्कपट शुद्ध प्रेम होता है। मनुष्यों को भी परस्पर वैसा व्यवहार करना चाहिए। एक-दूसरे से विमल प्रीति करनी चाहिए।

१५३. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शंतिवाम् ।। —अ० ३।३०।२।।

(पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल व्रतवाला हो, और (माता के (संमनाः) समान विचारवाला हो और (जाया) पत्नी (पत्ये) पति के प्रति (मधुमतीं) मधुर, मीठी (शंतिवां) शान्ति देनेवाली (वाचं) वाणी (वदतु) बोले।

माता-पिता और सन्तान का एक-दूसरे से विरोध न हो, पत्नी पति को कटु वचन बोलकर उसकी शान्ति भंग न करे। कोई कह सकते हैं, क्या माता-पिता का धर्म-विरुद्ध आज्ञा का भी पालन करना चाहिए? वेद का 'अनुव्रतः' पद इस शंका को दूर कर देता है। 'व्रत' का अर्थ सत्यभाषणादि धर्माचरण होता है। माता-पिता के सत्यभाषणादि व्रतों के अनुकूल व्रतधारण सन्तान के लिए परम कल्याणकारी है।

१५४. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

—अ० ३।३०।३।।

(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई भाई से द्वेष न करे, (उत) और (स्वसा स्वसारं मा) बहिन बहिन से वैर न करे। (सम्यंचः) समान ज्ञान तथा समान व्यवहार-वाले (सव्रताः) समान व्रतोंवाले (भूत्वा) होकर (भद्रया) शुभ रीति से (वाचं वदत) वाणी बोलो।

भाई-बहिन आदि की पारस्परिक प्रीति होनी चाहिए। जब मनुष्यों का ज्ञान और व्यवहार उत्तम और समान हो, उनके व्रत भी तुल्य हों, तभी एक-दूसरे के प्रति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मधुर वचन बोल सकते हैं।

१५५. येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ —अ० ३।३०।४॥

हम (वः गृहे) तुम्हारे घर में, तुम्हारे अन्तःकरण में (पुरुषेभ्यः संज्ञानं) मनुष्यों को समान समझानेवाला (तत्) वह (ब्रह्म) वेदोपदेश (कृण्मः) करते हैं (येन) जिसके कारण (देवाः) विद्वान् लोग (न वियन्ति) एक-दूसरे से अलग नहीं होते, (च) और (नो) न ही (मिथः) परस्पर एक-दूसरे से (विद्विषते) विद्वेष-वैर करते हैं।

परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याण के लिए वेदज्ञान प्रदान किया है, यदि उसपर आचरण किया जाय तो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष तथा अलगा-अलगी-भाव सर्वथा नष्ट हो जाए।

१५६. ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥
—अ० ३।३०।१५॥

(ज्यायस्वन्तः) बड़ों का आदर करनेवाले (चित्तिनः) विचारशील (संराधयन्तः) इकट्ठे होकर कार्य-सिद्धि करनेवाले (सधुराः चरन्तः) एक धुरावाले होकर व्यवहार करनेवाले तुम लोग (मा वि यौष्टं) एक-दूसरे से पृथक् मत होओ। (अन्यो अन्यस्मै) एक-दूसरे को (वल्गु वदन्तः) मधुर वचन कहते हुए (आ इत) सब ओर बढ़ो। मैं (वः) तुम सबको (सध्रीचीनाम्) समान गतिवाला तथा (संमनसः) समान मनवाला (कृणोमि) करता हूँ।

उन्नति के अभिलाषियों के लिए यह परमावश्यक है कि वे अपने से ज्ञान गुणादिक के कारण बड़ों का समादर करें, वेचित्त न हों, अपितु खूब सावधान एवं विचारवान् हों, परस्पर मीठा बोलनेवाले हों तथा अपने-आपको एकधुरा-सम्बद्ध समझें।

१५७. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ —अ० ३।३०।६॥

तुम्हारा (प्रपा) प्याऊ, पानी पीने का स्थान (समानी) एक हो, (वः अन्नभागः सह) आप लोगों का अन्नभाग साथ हो। मैं (वः) तुम सबको (सह) एक-साथ (समाने योक्त्रे) एक जुए में (युनज्मि) जोड़ता हूँ; (इव) जैसे (अराः) अरे (नाभि अभितः) नाभि के चारों ओर होते हैं, (तद्वत्) वैसे ही तुम (सम्यञ्चः) उत्तम ज्ञान, उत्तम व्यवहार से सम्पन्न होकर (अग्नि सपर्यत) ज्ञानरूप परमात्मा को पूजो।

आज जब 'हिन्दू का पानी, 'मुसलमान का पानी' आदि हृदयविदारक शब्द सुनाई दे रहे हैं, ऐसे समय 'समानी प्रपा' कितने महत्त्व का वाक्य है! उन लोगों को तो इसकी ओर और भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, जिनके यहाँ 'बाहमनियाँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पानी' रूपी पापमय शब्द सुनने पड़ते हों। अछूतों को अपने कुओं से पानी लेने से रोकनेवाले इस वेदवचन को विचारें, और सोचें कि उनका आचरण वेद से कितना विपरीत है। 'कन्नौजिए ग्यारह चूल्हे' के भक्तों को "सह वो अन्नभागः" का मनन करना चाहिए। वेद सबके लिए एक-साथ भोजन का विधान करता है। आज मनुष्य मनुष्य का वैरी हो रहा है, किन्तु वेद 'समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि' कहता है। जिस प्रकार एक जुए में बैल आदि कृषि आदि कार्यों की सिद्धि करते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों को भी एकमत होकर, एक-दूसरे से सबद्ध होकर कार्यसिद्धि करनी चाहिए, सब मिलकर प्रभु का पूजन करें, ज्ञान का अर्जन करें, परमात्मा को अपना केन्द्र बनाएं, स्वयं उसके अरे बनें, अर्थात् सदा परमात्मा की आज्ञा के अनुकूल आचरण करें।

१५८. **सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।**
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥
—अ० ३।३०।७॥

(सध्रीचीनान्) समान ज्ञानवाले तथा (संमनसः) समान मनवाले (वः सर्वान्) तुम सबको (संवननेन) एक-दूसरे के समादर के द्वारा (एकश्नुष्टीन्) समान खान-पानवाला (कृणोमि) करता हूँ। (अमृतं रक्षमाणः) जीवन की रक्षा करनेवाली (देवाः इव) दिव्यशक्तियों=सूर्यचन्द्र, प्राणादि की भाँति (सांय प्रातः) सायं प्रातः, सुबह-शाम (वः सौमनसः अस्तु) तुम्हारा मन विमल हो।

केवल ज्ञान की समानता से कुछ नहीं बनता, ज्ञान की समानता के साथ-साथ ज्ञानानुसार आचरण की समानता, व्यवहार की समानता की परमावश्यकता है। इस बात का उपदेश करने के लिए वेद में 'एकश्नुष्टीन्' शब्द पड़ा है। व्यवहार की समानता खान-पान में अभेदभाव से निश्चित हो सकती है। मन्त्र के उत्तरार्द्ध का मनन करने से प्रातः-सायं प्रभु की उपासना करने का विधान प्रतीत होता है। प्रातः-सायं दिन और रात्रि के आरम्भ-समय हैं। इस समय यदि चित्त विमल कर लिया जाए तो शेष समय चित्त शुद्ध रहता है, ऐसा वेद का यहाँ अभिप्राय मालूम पड़ता है।

ज्ञानी और वीर की एकता

१५९. **यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।**
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ —य० २०।२५॥

(यत्र) जहाँ (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्राह्मण=ज्ञानी तथा क्षत्रिय=वीर (सम्यञ्चौ) समान उद्देश्यवाले होकर (सह) एक-साथ (चरतः) पुरुषार्थ करते हैं, और (यत्र) जहाँ (देवाः) निपुण शिल्पी (अग्निना सह) अग्नि के साथ सहयोग रखते हैं, अथवा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जहाँ विद्वान् लोग अग्नि=यज्ञिय और शिल्पसम्बन्धी अग्नि के साथ सहयोग रखते हैं, (तं लोकं) उस लोक को (पुण्यं प्रज्ञेषं) पवित्र समझना चाहिए।

किसी देश में यदि ज्ञानी अपना निराला मार्ग चला रहे हों, क्षत्रिय निरपेक्ष होकर अपनी राह जा रहे हों, तो उस देश का नाश संनिकट समझना चाहिए। वह भाग्यशाली देश है, जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी=विरोधी नहीं हैं, अपितु एक-दूसरे के साथी हैं, अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय को मार्ग बताता है, क्षत्रिय ब्राह्मण की रक्षा करता है, दोनों एक-दूसरे को अन्याय-अत्याचार से रोकते हैं। साथ ही साथ उस देश में विद्वान् शिल्पी, याज्ञिक परोपकारी हों।

सात मर्यादाएँ

१६०. सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्हस्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥

—ऋ० १०।५।६॥

(कवयः) ज्ञानी महात्माओं ने (सप्त मर्यादाः) सात मर्यादाएँ (ततक्षुः) बनाई हैं, (इत्) यदि (तासां एकां) उनमें से एक का भी (अभिगात्) उल्लंघन करता है, तो वह (अंहुरः) पापी हो जाता है। किन्तु वह मनुष्य (ह) सचमुच (आयोः) प्रगति का, उन्नति का, अभ्युदय का, ज्ञान का (स्कंभ) आधार है, जो (धरुणेषु) विपत्ति के अवसरों, धैर्य की परीक्षा के समयों पर, (पथां विसर्गे) मार्गों के चक्कर पर भी (उपमस्य) उपमा देने के योग्य भगवान् के(नीड़े) आश्रय में(तस्थौ) स्थिर रहता है।

१. अहिंसा=मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न पहुँचाना, २. सत्य=यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके तदनुसार आचरण करना, ३. अस्तेय=पराए पदार्थ को स्वामी की आज्ञा के बिना कभी न लेना, ४. ब्रह्मचर्य=व्यभिचार-त्याग ५. शौच=शारीरिक तथा आत्मिक शुद्धि रखना, ६. स्वाध्याय=आत्मचिन्तन, वेदाध्ययन, ७. ईश्वरप्रणिधान=सब कर्म प्रभु के अर्पण करना, ये सात मर्यादाएँ हैं।

जो मनुष्य इन सात में से किसी का उल्लंघन करता है, वह घोर पाप करता है। सात मर्यादाओं से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक जिह्वा तथा एक गुह्येन्द्रिय भी अभिप्राय हो सकता है, इनके अतिक्रम से भी पाप होता है। वह मनुष्य सचमुच वीर है, बहादुर है, जो विपत्ति के समय, तथा जहाँ नाना मार्ग उपस्थित हों, अर्थात् जहाँ कर्त्तव्य का निश्चय न होता हो, ऐसी दशा में धर्म पर स्थिर रहे, मर्यादा का उल्लंघन न करे। ऐसे ही मनुष्य संसार में यश एवं प्रतिष्ठा पाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१. अहिंसा

१६१. प्रदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिँ्सीस्तन्वा प्रजाः ॥ —य० १२।३२॥

हे (अग्ने) विद्वन् ! (त्वं) तू (बृहद्भिः भानुभिः) महाज्ञानप्रकाशों से (भासन्) चमकता हुआ और (शिवेभिः) कल्याण-कारिणी (अर्चिभिः) ज्योतियों से, स्तुतियों से, पूजाओं से, ज्योतिष्मान्, प्रकाशमान होता हुआ (इत्) ही (प्रयाहि) उत्तम रीति से सर्वत्र आ जा, और (प्रजाः) प्रजाओं को (तन्वा) शरीर से (मा हिंसीः) मत मार।

जो मनुष्य ज्ञानी होते हैं, वे हिंसा नहीं करते, किसी भी प्राणी के प्राण हरण नहीं करते। हिंसा अज्ञान के कारण होती है। वेद में अनेक स्थानों में 'मां हिंसीः' ='मत मार' पाठ आता है। इस निषेधात्मक उपदेश के सिवा 'पशून पाहि'= पशुओं की रक्षा कर, मनुष्यों की रक्षा कर, इस प्रकार का भी उपदेश अनेक स्थानों पर वेद में मिलता है। यज्ञ में पशुहिंसा के लिए हिंसावादियों को भी आज तक कोई मन्त्र नहीं मिला, वे पशु को मारते समय ऐसे मन्त्र पढ़ते हैं जिनमें 'मा हिंसीः =मत मार' शब्द होते हैं। वेद के साथ कितना भयंकर उपहास है ! प्रसंग से यहाँ 'मांसाहार-निषेध'-सम्बन्धी मन्त्र भी दे देते हैं—

मांसाहार-निषेध

१६२. शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्व मांसान्यत्त ॥
—अ० २।२४।१॥

हे (शेरभक) नीच हिंसक ! हे (शेरभ) वध करनेवाले ! (किमीदिनः) सर्व-भोजियो ! (वः यातवः) तुम्हारे अनुयायी (पुनः यन्तु) लौट जाएँ, (हेतिः पुनः) तुम्हारा हथियार लौट जाए। (यस्य स्थ) तुम जिसके सम्बन्धी हो (तं अत्त) उसको खाओ, (यः वः प्राहैत्) जिसने तुम्हें भेजा (तं अत्त) उसको खाओ, (स्वमांसानि अत्त) अपने मांस खाओ।

कितनी अनुपम व्यंगभरी रीति से मांसाहार-निषेध किया है !

मनुष्य की बुद्धि जब बिगड़ जाती है, तब इसकी रुचि हिंसापरायण होती है। देखिए—

१६३. एकैकयैषा सृष्टचा सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥
अ० ३।२८।१॥

(यत्र) जिसमें (भूतकृतः) पृथिव्यादि भूतों को बनानेवाले परमाणु (विश्व-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रूपाः) अनेक रूपोंवाली (गाः) इन्द्रियों को (असृजन्त) रचते हैं, अथवा (भूतकृतः) यथार्थ ज्ञानवाले महात्मा (यत्र) जिस-जिस विषय में (विश्वरूपाः गाः) नानास्वरूप वाली इन्द्रियों को (असृजन्त) प्रेरणा करते हैं, वहां (एषा) यह बुद्धि (एकैकया-सृष्ट्या) एक-एक सृष्टि=इन्द्रिय के साथ (सं बभूव) सम्बद्ध होती है, संयुक्त होती है। (यत्र) जिस अवस्था में (यमिनी) बुद्धि (अपर्तुः विजायते) विशेष बिगड़ जाती है, तब (सा) वह (पशून्) पशुओं को (रिफती) अस्त्राघात से मारती हुई (रुशती) किसी दूसरे ढंग से हिंसा करती हुई (क्षिणाति) नाश करती है।

मन्त्र के पूर्वार्द्ध में दो प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण है। इन्द्रियां भूतों से बनी हुई हैं और एक काल में मन एक ही इन्द्रिय से संयुक्त हो सकता है। गौतम मुनि का 'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्' (न्या १. १. १४) सूत्र 'एकैकयैषा सृष्ट्या संबभूव' का अनुवाद है। 'यमिनी' का अर्थ हमने बुद्धि किया है। जो यमन करे=वश में करे उसे यमिनी कहते हैं; बुद्धि=मन इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। 'अपर्तुः' का अर्थ हमने 'बिगड़ा' किया है। ऋतु और ऋत वेद में अनेक स्थानों पर पर्यायवाची हैं, दोनों का एक ही धातु है। ऋतु का अर्थ सत्यनियम है, अपर्तु का अर्थ नियमभ्रष्ट=बिगड़ी होता है। यदि ऋतु का अर्थ मौसम=समय लिया जाय तब भी कोई आपत्ति नहीं, तब 'अपर्तु' का अर्थ बे-मौसम=बे-समय=बे-ठिकाना, अवसरभ्रष्ट अर्थ होंगे, वह भी तो नियमभ्रष्ट ही है।

२. सत्य

१६४. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ —यजु० १।५॥

हे (व्रतपते अग्ने) व्रतरक्षक तेजस्विन् परमात्मन्! (व्रतं चरिष्यामि) व्रत-करना चाहता हूँ, (तत् शकेयं) उसे कर सकूं (मे तत् राध्यताम्) मेरा वह व्रत सिद्ध हो, पूर्ण हो। (इदं अहं) यह मैं (अनृतात्) झूठ से हटकर (सत्यं उपैमि) सत्य को प्राप्त करता हूँ।

सत्य को ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

३. अस्तेय

१६५. अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन् मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥
—अ० १४।१।५७॥

(अस्याः रूपं) इसके स्वभाव को (मयि) अपने अनुकूल (वेदत् इत्) जानता हुआ ही (मनसः कुलायं पश्यन्) मन से वंशवृद्धि, कुल की उन्नति का विचार करके (वि-ष्यामि) प्राप्त होता हूँ, (स्वयं न अद्मि) चोरी का माल नहीं खाता हूँ, अपितु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(स्वयं) आप (श्रम्नानः) परिश्रम करता हुआ (मनसा) मन से भी (वरुणस्य पाशान्) पाप के फन्द को (उदमुच्ये) तोड़ चुका हूँ।

चोरी करना बड़ा भारी पाप है। कर्म से चोरी करना तो दूर, मन से भी न करनी चाहिए।

४. ब्रह्मचर्य

१६६. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत॥ —अ० ११।५।१९॥

(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्यरूप तप से (देवाः) विद्वान् (मृत्युम् उपाघ्नत) मत्यु का नाश करते हैं, (इन्द्रः) जीवात्मा (ब्रह्मचर्येण ह) ब्रह्मचर्य से ही (देवेभ्यः) इन्द्रियों के लिए (स्वः) सुख, तेज, ज्योति (आभरत्) धारण कर सकता है।

पूर्वार्द्ध का अर्थ यह भी हो सकता है—ब्रह्मचर्य-तप से इन्द्रियाँ मृत्यु=प्रमादादि का नाश कर सकती हैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य धारण करने से, आत्मा और इन्द्रियों में तेजस्विता तथा शक्ति आती है। प्रत्येक इन्द्रिय का संयम करने से आलस्य-प्रमाद दूर होकर मृत्युनाश=दीर्घजीवन प्राप्त होता है।

५. शौच

१६७. मृत्योः पदं योपयन्तोयदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः। आप्यायमानाः
प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥ —ऋ० १०।१८।२॥

(यदा) यदि (प्रजया धनेन) सन्तान और धन के द्वारा (आप्यायमानः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए और (मृत्योः पदं) मृत्यु के प्राप्तिकरण को (योपयन्तः) उखाड़ते हुए, (प्रतरं द्राघीयः आयुः) बहुत बड़ी लम्बी आयु को (एत) प्राप्त होना चाहो, तो (शुद्धाः) शुद्ध अर्थात् बाह्यशौचसम्पन्न और (पूताः)पवित्र=आन्तरिक पवित्रता से युक्त, और (यज्ञियासः) यज्ञ के अधिकारी, अथवा यज्ञ करनेवाले बनो।

जिन मनुष्यों के अन्दर-बाहर दोनों पवित्र होते हैं वे दीर्घजीवी, नीरोग, धन-धान्य-सन्तान-सम्पन्न होते हैं।

६. स्वाध्याय

१६८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ —ऋ० ९।६७।३१॥

(यः) जो (पावमानीः) पावमानी=कल्याणी वेदवाणी को(अध्येति) पढ़ता है, मनन करता है (सः) वह (ऋषिभिः संभृतं) ऋषियों से भरण किये हुए, (मातरिश्वना) योगी ईश्वरभक्त से (स्वदितं) भोग्य (सर्वं) सर्व प्रकार के (पूतं) पवित्र (रसं) रस, आनन्द को (अश्नाति) भोग करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदाध्ययन, और तदनुसार आचरण का फल इस मन्त्र में वर्णित है।

ईश्वरप्रणिधान

१६९. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रतिनो हर्य तद्वचः ॥
—ऋ० १।५७।४॥

हे (इन्द्र) शक्तिशालिन् प्रभो ! (प्रभूवसो) अनन्तैश्वर्यसम्पन्न विभो ! (पुरुस्तुत) अनेकों से स्तूयमान परमात्मन् ! (ये इमे वयं ते) ये जो हम तेरे हैं, (ते) वे हम (त्वा आरभ्य) तुझे आरम्भ करके=अर्थात् सब कार्यों के आरम्भ में तुझे स्मरण करके (चरामसि) व्यवहार करते हैं (त्वत् अन्यः) तुझसे भिन्न कोई दूसरा (गिर्वणः गिरः) उपासक के शब्दों को (नहि सघत्) नहीं सुनता, (क्षोणीः इव) पृथिवी के सदृश दृढ़ (नः तत् वचः) हमारे उस वचन को (प्रतिहर्य) तू पसन्द कर।

मनुष्य हर समय अपने-आपको परमेश्वर का समझे, सब कार्यों में प्रभु का स्मरण अवश्य करे।

आहार-व्यवहार

१७०. व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं
पितरं मातरं च ॥ —अ० ६।१४०।२॥

(व्रीहिं अत्तं) तुम दोनों चावल खाओ, तुम दोनों (यवं अथो माषं अथो तिलं अत्तं) जौ और माष तथा तिल खाओ, (रत्नधेयाय) रमणीयता धारण करने के लिए (वां) तुम दोनों का (एषः) यही (भागः निहितः) हिस्सा रखा है। (दन्तौ) दाँतों के द्वारा (पितरं च मातरं) माता और पिता को (मा हिंसिष्टं) मत मारो !

चावल, जौ, उड़द, तिल आदि शक्तिप्रद, तथा रोगनिवारक पदार्थ खाने चाहिएँ। हिंसादि के द्वारा बड़ों को क्लेश नहीं देना चाहिए।

१७१. सं सिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥
—अ० २।२६।४॥

(गवां क्षीरं सं सिंचामि) गौओं का दूध मैं सिंचित करता हूँ, (आज्येन) घी के साथ (बलं रसं) बलदायक रस को (सं) सींचता हूँ, अथवा घी के द्वारा बल और सुख को सिंचित करता हूँ। (मयि गोपतौ) मुझ गोपाल के पास (गावः ध्रुवाः) गौएँ नित्य रहें (अस्माकं वीरां:) हमारे वीर सन्तानादि (सं सिक्ताः) घृतदुग्धादि से सिंचित, तर रहें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूध-घी के सेवन से मनुष्यों में बल और आनन्द की वृद्धि होती है। प्रत्येक घर में दूध देनेवाली गौएँ सदा रहें, ताकि सन्तान-घी दूध से सदा तर रहे।

१७२. पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्॥
—अ० १९।३१।५॥

(द्विपदां चतुष्पदां पशूनां) द्विपाद और चतुष्पाद पशुओं से (पुष्टिं) पुष्टि (च) और (यत् धान्यं) जो धान्य है उसे (अहं) मैं (परिजग्रभ) ग्रहण करता हूँ (बृहस्पतिः) ज्ञानपति, सर्वज्ञ (सविता) सकल जगदुत्पादक, अखिल सत्प्रेरणाप्रवर्त्तक भगवान् (मे) मुझे (पशूनां) पशुओं का (पयः) दूध तथा (ओषधीनां) ओषधि-वनस्पतियों के (रसं) रस (नियच्छात्) देवे।

इस मन्त्र में स्पष्ट आदेश है कि पशुओं से उनका दूध लेना, न कि मांस। लोगों ने जिह्वा की लोलुपता के कारण पशुओं को मारना आरम्भ कर दिया। वेद में कहीं भी मांसभोजन या मांसहवन का विधान नहीं है।

मद्यपान-निषेध

१७३. हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते॥ —ऋ० ८।२।१२॥

(हृत्सु) जी खोलकर (सुरायां पीतासः) शराब पीनेवाले (दुर्मदासः न) बदमस्तों की भाँति (युध्यन्ते) लड़ते हैं और (नग्नाः न) नंगों की तरह (ऊधः) रात्रि को (जरन्ते) कोलाहल=शोर करते हैं, बड़बड़ाते हैं।

शराब पीने से जो दुर्दशा होती है, उसका यह साधारण-सा वर्णन है।

जुआ-निषेध

१७४. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥
—ऋ० १०।३४।१३॥

हे (कितव) जुआरी! (अक्षैः मा दीव्यः) जुआ मत खेल! (इत् कृषिं कृषस्व) यदि खेती करे तो (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) उसे बहुत मानता हुआ धन से आनन्द मनाएगा, क्योंकि (अयं) यह (अर्यः) श्रेष्ठ (सविता) उपदेष्टा (मे) मुझे (तत् विचष्टे) यह उपदेश करता है कि (तत्र) उसी में (जाया) स्त्री है और (तत्र गावः) उसीमें गौ आदि पशु हैं।

जुएबाज धनार्जन के लोभ से जुए में प्रवृत्त होता है, उसे यहाँ उपदेश किया है, भद्र पुरुष, जुआ छोड़! धन चाहते हो तो खेती करो! उसमें धन भी बहुत मिलेगा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुख की भी कमी न होगी। तुम्हारे स्त्री-बच्चे आदि, गौ आदि सब पास ही रहेंगे। ऋग्वेद १०।३४ सूक्त सारा का सारा जुए के दोषों के वर्णन से भरा पड़ा है। जुआरी के घर की दुर्दशा का बहुत ही हृदयद्रावक वर्णन किया गया है। यहाँ स्थानाभाव से वे सारे मन्त्र उद्धृत नहीं करते।

दान-उपकार

१७५. स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरिषु कृणुते सखायम् ॥

(सः इत् भोजः) वही भोजन करता है, (यः) जो (गृहवे) घर पर आए हुए (अन्नकामाय) अन्न की अभिलाषा से (चरते) घूमनेवाले (कृशाय) दुबले-पतले मनुष्य को (अन्नं) अन्न (ददाति) देता है। (यामहूता) समय-समय पर याचन करने पर दान देने के लिए (अस्य) इसके पास (अरं=अलं) पर्याप्त=काफी (भवति) होता है और इस कारण से (अपरिषु) कठिनताओं में (सखायं कृणुते) मित्र कर लेता है।

जो मनुष्य भूखे को अन्नदान करता है, प्रभु उसकी दानशक्ति बढ़ाते हैं। उसकी इस स्वाभाविक दानशीलता के कारण उसकी विपत्तियों में लोग उसके मित्र होकर उनको दूर करते हैं। सच्चा भोजन ही यही है जो पात्र को दिया जाता है।

१७६. मोघमन्नं विदन्ते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

—ऋ० १०।११७।६॥

(सत्यं ब्रवीमि) मैं सच-सच कहता हूँ, वह (अप्रचेताः) मूर्ख है जो (मोघं अन्नं विन्दते) व्यर्थ अन्न प्राप्त करता है; (सः) वह अन्नप्राप्ति (तस्य वधः इत्) उसकी मृत्यु ही है, जो कंजूस (न) न तो (अर्यमणं) श्रेष्ठ धार्मिक मनुष्य को (पुष्यति) पालता है, और (न) न ही (सखायं) मित्र को। (केवलादी) अकेला खानेवाला (केवलाघः भवति) केवल पापी ही होता है।

धनी होता हुआ जो मनुष्य दान नहीं करता, अपने मित्रों तथा लोकहित साधक महात्माओं की सेवा नहीं करता, उसका धन व्यर्थ है। उस धन से उसके जीवन में सुखवृद्धि नहीं होती, अपितु वह धन उसकी मौत का कारण बनता है। वह कंजूस उसका अकेला उपभोग करना चाहता है, दूसरे अधिकारी इससे रुष्ट होकर उसका प्राणघात करते हैं—ऐसी घटनाएँ आजकल बहुत हो रही हैं। वेद की इस शिक्षा पर आचरण किया जाए, तो संसार की आजकल की विषम सामाजिक समस्याएँ स्वयं ही समाप्त हो जाएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न देने से देना अच्छा

१७७. कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभिष्यात्॥
—ऋ० १०।११७।७॥

(फालः) हल (कृषन् इत्) खेती करता ही (आशितं) भोजनसामग्री (कृणोति) करता है।(यत्) चलनेवाला मनुष्य (चरित्रैः) चलने से (अध्वानं अपवृङ्क्ते) मार्ग को कम करता है। (वदन् ब्रह्मा) बोलनेवाला ज्ञानी (अवदतः) न बोलनेवाले से श्रेष्ठ होता है। (पृणन्) देनेवाला (आपिः) बन्धु (अपृणन्तं) न देनेवाले कृपण से (अभि-स्यात्) श्रेष्ठ होता है।

इस मन्त्र में कई उपदेश हैं—१. साधन-सामग्री हो, किन्तु उसका उपयोग न किया जाए, तो कोई लाभ नहीं। २. बैठे रहने से, न हिलने से मार्ग समाप्त नहीं होता, लक्ष्यसिद्धि नहीं होती। ३. 'सत्यं मौनाद्विशिष्यते' यह मनुवचन 'वदन—वनीयान्' का अनुवाद है। इसमें तो यह भी कहा कि वह ज्ञानी किस काम का, जो उपदेश न करे! ज्ञान अर्जन करके फिर उपदेश आदि से उसे सफल करना चाहिए।

पवित्र कमाई

१७८. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः॥ —ऋ० ८।९५।८॥

हे (इन्द्र)ऐश्वर्यसम्पन्न! तू(शुद्धः) पवित्र, हमारे पास (आगहि) आ,(शुद्धाभिः) पवित्र (ऊतिभिः) कमाइयों से, रक्षाओं से (शुद्धः) हो। और (शुद्धः) पवित्र होता हुआ (रयिं) धन को (नि धारय)धारण कर।(शुद्धः सोम्यः) शुद्ध और शान्त होकर तू (ममद्धि) आनन्दित हो, और सुखी कर।

कमाई नेक होनी चाहिए। उस नेक कमाई की रक्षा भी पवित्र उपायों से करनी चाहिए। धन-धान्य-सम्पन्न बनना चाहिए, किन्तु उसके लिए धर्मयुक्त पवित्र साधनों को वर्तना चाहिए।

स्त्री-गौरव

१७९. यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥ —अ० १४।१।४३॥

(यथा) जिस प्रकार (वृषा सिन्धुः) शक्तिशाली समुद्र (नदीनां साम्राज्यं) नदियों के साम्राज्य पर (सुषुवे) शासन करता है (एवा) उसी प्रकार (त्वं) तू

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(पत्युः) पति के (अस्तं) घर (परेत्य) पहुँचकर (सम्राज्ञी एधि) महाराणी हो।

वैदिक मर्यादा के अनुसार पति घर का सम्राट् है, पत्नी सम्राज्ञी है, पति मालिक, स्वामी, पत्नी=मालकिन, स्वामिनी, यह भी उक्त भाव को द्योतित करते हैं। स्त्री जाति की उन्नति के लिए, समाज में उनका यथेष्ट समादर होने के लिए इस भाव के प्रसार की विशेष आवश्यकता है।

१८०. इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान्महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु॥
—अ० २।३६।३॥

हे (अग्ने) परमात्मन्! (इयं नारी) यह स्त्री (पतिं विदेष्ट) पति को प्राप्त करे; (राजा) शोभायुक्त (सोमः) सुशील पति (हि) ही इसे (सुभगां) सौभाग्यवती (कृणोति) करता है। यह देवी (पुत्रान् सुवाना) पुत्रों को उत्पन्न करती हुई (महिषी भवाति) महिषी=महाराणी होवे, (पतिं गत्वा) पति को प्राप्त कर (सुभगा) यह सौभाग्यवती (विराजतु) विशेष शोभायुक्त हो।

वेद में जहाँ-जहाँ पत्नी का वर्णन है, प्रायः सम्राज्ञी, महिषी, आदि शब्दों से वर्णन है। स्त्री जाति के सम्बन्ध में इतने उत्कृष्ट और पूज्यभाव अन्य किसी मत के धर्मग्रन्थ में नहीं मिलते।

स्त्री का यज्ञाधिकार

१८१. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे॥
—अ० ६।१२२।५॥

(शुद्धाः) शुद्ध (पूताः) पवित्र (यज्ञियाः) यज्ञ की अधिकारिणी (इमाः योषितः) इन स्त्रियों को (ब्रह्मणां हस्तेषु) विद्वानों के हाथों में (पृथक्) जुदा-जुदा (प्रसादयामि) प्रसन्नता से अर्पण करता हूँ। (यत्कामः अहं) जिस वस्तु की अभिलाषी मैं (वः इदं अभिषिञ्चामि) तुम्हारा यह अभिषेक करता हूँ (मरुत्वान्) शक्तिशाली (इन्द्र) प्रभु (तत्) वह (मे) मुझको (ददातु) देवे।

इस मन्त्र में 'योषितः' का विशेषण 'यज्ञियाः' आया है। 'यज्ञिया' का अर्थ है यज्ञ में चतुर, निपुण, यज्ञाधिकारी। इस विशेषण के होते कौन स्त्रियों का यज्ञाधिकार छीन सकता है! जब स्त्रियों को यज्ञाधिकार है तो वेदाधिकार स्वयं सिद्ध हो गया, क्योंकि बिना वेदमन्त्र पढ़े यज्ञ कैसे कर सकेंगी?

पुनर्विवाह

१८२. या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्।
पंचौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः॥ —अ० ९।५।२७॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(या) जो स्त्री (पूर्वं पतिं) पहले पति को (वित्त्वा) प्राप्त करके (अथ) उसके मरने पर या असमर्थ होने पर (अन्यं अपरं) अपर, दूसरे को (विन्दते) प्राप्त करती है,(तौ) वे दोनों पति-पत्नी (पंचौदनं अजं) पंचौदन अज अर्थात् अपरिमित यज्ञ को (ददातः) धारण करते हैं (च) और (न वि योषतः) एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते हैं।

विधवा-विवाह से जिनकी नाक कटती है, वे धर्मधुरीण ध्यान से इस मन्त्र का मनन करें।

'पंचौदनं अजं' का अर्थ स्वयं वेद ने 'अपरिमित यज्ञ' बताया है, अ०९।५।२०, २१ मन्त्रों को देखिए—

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी॥
सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पंचौदनः॥

(वै) निश्चय करके (अजः) अज ने ही (अग्रे) सबसे पहले (इदं वि अक्रामत्) इन सबको गति दी,(इयं) यह पृथिवी (तस्य उरः अभवत्) उसकी मानो छाती हुई। (द्यौः पृष्ठं) द्यौलोक पीठ, (अन्तरिक्षं मध्यं) अन्तरिक्ष शरीर का मध्यभाग, (दिशः पार्श्वे) दिशाएँ पहलू और (समुद्रौ) दोनों समुद्र ऊपर और नीचे का (कुक्षी) कोखें हुईं, (सत्यं च ऋतं च) सत्य और ऋत (चक्षुषी) दो आँखें, (विश्वं सत्यं) ब्रह्माण्ड सत्याचरण (श्रद्धा प्राणः) श्रद्धा प्राणस्वरूप और (विराट्) विराट् (शिरः) शीर्ष स्थानीय हुआ,(एष वै अपरिमितः यज्ञः) यही अपरिमित यज्ञ है(यत् अजः पंचौदनः) जो पंचौदन अज है।

मन्त्र में 'अन्यं' और 'अपरं' दो शब्द 'पति' के विशेषण हैं जो यह संकेत कर रहे हैं कि दूसरा पति 'पर' न हो, अपना देवरादि ही हो।

दूर देश में विवाह

१८३. परमस्याः परावतो रोहिदश्व ऽ इहागहि।
पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः॥ —य० ११।७२॥

हे (अग्ने) तेजस्वि पुरुष ! (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों-वाले आप (परमस्याः) इस श्रेष्ठ रूप-गुण-शीलवती के लिए (परावतः) दूर देश से (इह) यहाँ (आ गहि) आए हैं। (त्वं) आप (पुरीष्यः) पालना करनेवाले और (पुरुप्रियः) सर्वप्रिय हैं, अथवा पुरु=बहुतों में से प्रिय=पसन्द किये गए हैं, तू (मृधः) सारी कठिनताओं को (तर) पार कर।

विवाह दूर देशों में करना चाहिए। कन्या शीलवती होनी चाहिए, पुरुष वीर, तेजस्वी हो, गृहस्थी का भार उठाने लायक हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरीष्य और पुरुप्रिय शब्द विशेष विचार के योग्य हैं। विवाह करने का अधिकार उस पुरुष को है, जो पुरीष्य=पालन करने में समर्थ हो; जिसका अपना निर्वाह अच्छी प्रकार हो रहा हो, और आगे पत्नी तथा परिवार का भार उठा सके। आजकल जो बाल-विवाह की रीति के पक्षपाती हैं, वे इसपर विशेष ध्यान दें। 'पुरुप्रिय' जो बहुतों में से पसन्द किया गया हो। अनेक विवाहाभिलाषी पुरुषों में से जिसके गुण-कर्मादि कन्या से मिलते हों, उसके साथ कन्या का विवाह होना चाहिए।

पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम

१८४. इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वायुर्व्यश्नुताम् ॥ —अ० १४।२।६४॥

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इह) इस संसार में (इमौ दम्पती) इन पति-पत्नी को (सं नुद) इस प्रकार अच्छी प्रेरणा कर कि वे (चक्रवाका इव) चकवा-चकवी की भाँति प्रेम करें। (एनौ) ये दोनों (प्रजया) सन्तान के साथ (सु-अस्तकौ) अच्छे घरवाले होते हुए (विश्वं आयुः) पूर्ण आयु (अश्नुताम्) भोगें।

दाय-भाग

१८५. द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः॥ —अ० १२।२।३५॥

(यः क्रव्याद् अग्निः अनिराहितः) जो क्रव्याद् अग्नि नितरां आहित नहीं हुआ वह (अवर्त्या)वर्ति=गुजारे के न होने के कारण (ज्येष्ठस्य पुत्रस्य) ज्येष्ठ पुत्र के (द्विभाग) दो भाग धन को (आदाय) लेकर (प्र क्षिणाति) नष्ट करता है।

ज्येष्ठ पुत्र को दो हिस्से देने का निर्देश है।

ब्राह्मण

१८६. ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्॥
—ऋ० ७।१०४।८॥

(सोमिनः) सौम्य-शान्त अथवा सोमयाग करनेवाले (ब्राह्मणासः) ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण (ब्रह्म) वेद को (परिवत्सरीणं) समस्त संसार में प्रचारित (कृण्वन्तः)करने वाले अथवा (परिवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) वरसों ब्रह्म=यज्ञ वा तप करनेवाले (वाचं अक्रत) उपदेश करते हैं। वे (अध्वर्यवः) हिंसारहित कर्म करनेवाले, सन्मार्ग दिखानेवाले (घर्मिणः) यज्ञ-याग करनेवाले (सिष्विदानाः) तप करनेवाले तथा करानेवाले (केचित् गुह्या न) कुछ गुप्त पदार्थों की भाँति (आविर्भवन्ति)प्रकट होते हैं। अथवा (न केचित् गुह्याः) कुछ न छिपाते हुए प्रकट होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्राह्मण को स्वभाव का शान्त-तपस्वी यजनशील होना चाहिए। समस्त संसार में वेदप्रचार करना, भूले-भटकों को मार्ग दिखाना उसका मुख्य कर्त्तव्य है। उसे अपने-आपको छिपा न रखना चाहिए, सदा प्रकट रखना चाहिए, जिससे संसार का उपकार होता रहे।

शस्त्रास्त्रधारी

१८७. तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्॥

—अ० ५।१८।९॥

(तीक्ष्णेषवः) तेज तीरोंवाले (हेतिमन्तः) हथियारोंवाले (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (यां शरव्यां) जिस तीरसमूह को (अस्यन्ति) फेंकते हैं (सा मृषा न) वह व्यर्थ नहीं होता। (तपसा) तप से=कष्ट सहन करके (च उत) और (मन्युना) न्याययुक्त क्रोध से, वेग से (अनु-हाय) पीछा करके (एनं) इस शत्रु को (दूरात्) दूर से ही (अव भिन्दन्ति) भेदन करते हैं।

आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण को अवश्य शस्त्र उठाना चाहिए। उसका चलाया तीर चूकता नहीं। क्योंकि वह जब युद्ध में आएगा, दृढ़ निश्चय एवं स्थिर-मति से शत्रु का सामना करेगा।

पुरोहित

१८८. संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः॥

—अ० ३।१९।१॥

(मे इदं ब्रह्म) मेरा यह ज्ञान (संशित) सूक्ष्म हो, मेरा (वीर्य) शत्रु को दूर करनेवाला सामर्थ्य तथा (बल) रक्षा करने की शक्ति (संशितं) अत्यन्त तेजस्वी हो; वह (क्षत्रं) क्षत्रियवर्ग (संशितं) तीव्र, तेजस्वी तथा (अजरं) किसी से कष्ट न (अस्तु) हो, (येषां) जिनका (अहं) मैं (पुरोहितः) पुरोहित हूँ।

पुरोहित के ज्ञान और बल दोनों ही उत्तम होने चाहिएँ। पुरोहित का कर्त्तव्य है कि वह अपने यजमानवर्ग को सदा उत्तेजित रखे, उन्हें तेजस्वी बनाए रखे; कभी भी हतोत्साह, हीनवीर्य, दुर्बलहृदय, तेजोहीन न होने दे।

क्षत्रिय

१८९. वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्॥

—ऋ० ५।५७।२॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे (मरुतः) मरने-मारने के लिए उद्यत वीर क्षत्रियो ! तुम (वाशीमन्तः) परशु-धारी (ऋष्टिमन्तः) तोमरवाले (सुधन्वानः) उत्तम धनुषवाले (इषुमन्तः) शरवान् (निषंगिणः) तरकशवाले (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वोंवाले (सु-रथाः) श्रेष्ठ रथोंवाले (सु-आयुधा) बढ़िया हथियारोंवाले, उत्तम युद्धसामग्रीयुक्त और (मनीषिणः) मननशील, विचारवान्, मनस्वी, मानी तथा (पृश्निमातरः) पृथिवी=देश को माता माननेवाले (स्थ) हो, अतः (शुभं याथन) अच्छे परिणाम को प्राप्त करो।

वाशी, ऋष्टि, धन्व, इषु, निषंग हथियारों के नाम हैं। क्षत्रिय को सदा शस्त्रास्त्र से सुसज्जित रहना चाहिए। उसे 'मनीषी' होना चाहिए, अर्थात् अपने मन पर, चित्त की वासनाओं पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिए। किसी से दबे नहीं, मूर्खों की भाति बिना सोचे कुछ न करे। देश को माता समझे; जिस प्रकार एक सुपुत्र माता का कष्ट सहन नहीं कर सकता, सर्वस्व लगाकर भी माता का कष्ट निवारण करता है, वैसे ही क्षत्रिय का कर्त्तव्य है कि वह देशमाता, मातृभूमि का संकट काटने में अपने प्राणों की बाजी लगा दे। ऐसे लोग अवश्य शुभफल प्राप्त करते हैं।

वैश्य

१६०. इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्॥
—अ० ३।१५।१॥

(अहं) मैं (इन्द्रं) धनसम्पन्न (वणिजं) वैश्य को (चोदयामि) प्रेरणा करता हूँ कि (सः न ऐतु) वह हम लोगों के पास आवे, और वह (नः) हमारा (पुरःएता) अगुआ (अस्तु) होवे। (अरातिं) दान न देनेवाले कंजूस (परिपन्थिनं) डाकू (मृगं) पशु-स्वभाववाले शत्रु को (नुदन्) दूर करता हुआ (सः) वह (ईशानः) धनस्वामी (मह्यं) मुझे (धनदाः अस्तु) धन देनेवाला हो।

वैश्य को धनसम्पन्न होकर अपने वर्ण का मुखिया बनने का यत्न करना चाहिए। मुखिया बनने के लिए तीन गुण तो उसमें अवश्य चाहिएँ—१. अराति=कंजूस न हो, उदार हो, २. परिपन्थी=व्यापार-मार्ग का रोकनेवाला, सट्टा आदि करनेवाला न हो, ३. पशुवृत्ति का न हो, अपस्वार्थी न हो। ऐसा व्यापारी अपने देश के मुखिया में परिगणित होने लगता है।

शूद्र

१६१. तपसे शूद्रम्। —यजु० ३०।५॥

(तपसे) तप=मेहनत से, परिश्रम से होनेवाले कर्मों के लिए (शूद्रं) शूद्र है। 'तप' करना हरएक का सामर्थ्य नहीं है। तपस्वी को कौन नीच कह सकता है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जा तपस्वी है, वह नीच कैसे ? शूद्र को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले अपने-आपको वैदिक धर्मी भी कहते हैं, यह आश्चर्य है !

प्रायश्चित्त से शुद्धि

१६२. यदाशसा निःशसाऽभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥

—ऋ० १०।१६४।३॥

(आशसा) आशा से (निःशसा) दुष्टता से (अभिशसा) कुसंगति के कारण (जाग्रतः) जागते हुए या (स्वपन्तः) सोते हुए हमने (यत्) जो (उप आरिम)अपराध किये, (अग्निः) प्रायश्चित्ताग्नि उन (विश्वानि) सब (दुष्कृतानि) दुराचारों, कुकर्मों (अजुष्टानि) असभ्य निन्दनीय कर्मों और भावों को (अस्मत्) हमसे (आरे)दूर(अप दधातु) हटावे ।

धर्मपरिवर्तन, या पाप में प्रवृत्ति आशा=लोभ, दुराचार एवं कुसंगति के कारण होती है । मनुष्य प्रायश्चित्त करके उन सब भावों को दूर करे ।

१६३. वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥

—अ० १२।२।२८॥

(वर्चसे) तेजप्राप्ति के लिए (वैश्वदेवीं) सब शुभ गुणों के अभ्यास को (आरभध्वम्) वेग से आरम्भ करो । (शुद्धाः भवन्तः) शुद्ध होकर (शुचयः) पवित्र और (पावकाः) दूसरों को पवित्र करनेवाले बनो । तुम हम सब (सर्ववीराः) पूर्ण वीर बनकर (दुरिता पदानि) बुरी अवस्थाओं को, पापाचरणों को (अतिक्रामन्तः) लाँघते हुए, (शतं हिमाः) सौ वर्ष (मदेम) आनन्द से रहें ।

पूर्ण आयु प्राप्त करके सुखी रहने के उपाय इस मन्त्र में कहे हैं ।

१. यदि धर्मच्युति हो गई हो, कोई पाप हो गया हो, तो प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना, २. शुचयः=अन्दर और बाहर से पवित्रता बनाए रखना, ३. पावकाः=अपनी पवित्रता स्थिर रखने के लिए सदा अशुद्धों को शुद्ध करते रहना, दूसरों को पवित्र धर्म का उपदेश करते रहना, ४. समस्त सद्गुणों को प्रयत्नपूर्वक धारण करना ५. दुराचार को त्यागना ।

सबको आर्य बनाओ

१६४. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ —ऋ० ९।६३।५॥

हे (अप्तुरः) सत्कर्मों में निपुण सज्जनो ! (इन्द्रं) परमेश्वर की (वर्धन्तः)बड़ाई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते हुए (अराव्णः) पापियों को (अपघ्नन्तः) नाश करते हुए (विश्वं) संपूर्ण संसार को (आर्य) आर्य (कृण्वन्तः) बनाओ।

पापी से पापाचरण का छुड़ाना, पापी का नाश करना है, क्योंकि पाप-सम्बन्ध से ही तो कोई पापी होता है। जब उसका पापाचार छुड़ा दिया, तो वह पापी न रहा। सारे संसार को आर्य=श्रेष्ठ बनाने का यत्न करना चाहिए।

आत्म-सुधार

१६५. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

—अ० ८।४।२२॥

हे (इन्द्र) शत्रुनाश करने में समर्थ धर्मवीर! (उलूकयातुं) उल्लू की चाल (शुशुलूकयातुं) भेड़िये की चाल (श्वयातुं) कुत्ते की चाल (उत) और (कोकयातुं) चिड़े की चाल (सुपर्णयातुं) गरुड़ की चाल (उत) और (गृध्रयातुं) गिद्ध की चाल को (जहि) त्याग दे और (रक्षः) इस राक्षस को (इव) मानो (दृपदा) ज्ञानरूप पत्थर से (प्रमृण) सर्वथा कुचल दे।

उल्लू प्रकाश से घबड़ाता है, उल्लू की चाल से तात्पर्य है ज्ञान-प्रकाश से घबड़ाना; भेड़िया कपटी तथा क्रूर होता है, भेड़िये की चाल का अर्थ हुआ हिंसा, क्रूरता, क्रोध आदि; कुत्ता जरा-से भोजन के लिए अपने सजातीय कुत्ते से झगड़ा करता है, कुत्ते की चाल का अभिप्राय है व्यर्थ में परस्पर झगड़ा करना; चिड़ा बहुत कामी होता है, चिड़े की चाल का अर्थ है कामातुर होना; गरुड़=नीलकंठ अहंकारी होता है, गरुड़ की चाल से अभिप्राय घमण्ड=अहंकार है; गृध्र=गिद्ध लालची प्रसिद्ध ही हैं, गिद्ध की चाल का अर्थ है लोभ।

इस प्रकार इस मन्त्र में छः महाशत्रुओं—मोह, क्रोध, मत्सर, काम, मद, तथा लोभ के नाश का उपदेश है। इन सबका मूल मोह=अज्ञान है, अतः ज्ञान से इनका नाश करना चाहिए।

१६६. यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णम्
बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥

—य० ३६।२॥

(यत्) जो (मे) मेरी (चक्षुषः) आँख का (हृदयस्य) दिल का (वा) अथवा (मनसः) दिमाग का (अतितृण्णं) बहुत फटा हुआ (छिद्रं) छिद्र है, (बृहस्पतिः) ज्ञान-पति परमेश्वर (मे) मेरे (तत्) उस दोष को (दधातु) ठीक करे। (यः भुवनस्य पतिः) जो सृष्टि का स्वामी है, वह (नः शं भवतु) हमें सुखदायी हो।

बाहर से जितना हमें ज्ञान मिलता है, उसका अधिक भाग आँख के द्वारा आता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है, इस कारण आँख इन्द्रियों में प्रधान है। उसके दुष्ट होने से हृदय और मन भी दूषित हो जाते हैं। इस वास्ते मन=हृदय और दिल को तथा इन्द्रियों को सदा वश में रखना चाहिए। इनको वश में रखने के लिए मन्त्र के उत्तरार्द्ध में उपाय बतलाया है। सदा ज्ञानस्वरूप भगवान् का स्मरण रखना चाहिए।

सत्संगति

१६७. दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद्यक्षं भुवनस्व मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति॥

—अ० १०।८।१५॥

(पूर्णेन) पूर्ण के साथ रहने से (दूरे वसति) दूर-दूर बास करता है और (ऊनेन) और न्यून के संग रहने से (दूरे हीयते) दूर जा गिरता है।(भुवनस्य मध्ये) संसार के बीच में (महत् यक्षं) एक बड़ा पूज्य देव है(राष्ट्रभृतः) राष्ट्र के धारक (तस्मै)उसी को (बलिं) बलि (भरन्ति) अर्पण करते हैं।

उत्तम पुरुष की संगति से मनुष्य का हृदय दूर तक उदार होता है। दुर्जन पुरुषों के संसर्ग के कारण सज्जन पुरुषों से दूर जा पड़ता है। सारे वीर जिस अनुत्तम गुणगण-रत्नाकर भगवान् को आत्मसमर्पण करते हैं, उसी की सदा संगति करनी चाहिए।

१६८. अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥

—ऋ० १०।६३।१२॥

हे (देवाः) विद्वानो ! परोपकारप्रिय सत्पुरुषो ! (अमीवां) रोग को (अस्मत्) हमसे (अप) दूर (युयोतन) पृथक् कीजिए, (विश्वां अनाहुतिं) सब प्रकार के अनाहुति=अयाज्ञिकता=यज्ञ न करने के भावों को (अप) हमसे दूर कीजिए (दुर्विदत्रां) दुष्टाचार, दुष्ट विचार, दुष्टाहार, दुष्ट व्यवहार, दुष्ट कमाई को, (अरातिं) कंजूसी, कृपणता, अदानशीलता को, (अघायतः) पाप की इच्छा करने-वालों को और (द्वेषः) द्वेषियों को, वैरियों को, द्वेषभावों को (आरे) दूर हटाइए। (स्वस्तये) अच्छी स्थिति के लिए, स्वस्थता के लिए (नः) हमें (उरुः) बड़ी (शर्म) शान्ति, कल्याणमयी अवस्था (यच्छत्) दीजिए।

विद्वानों के सत्संग से निम्नलिखित फल अवश्य मिलते हैं—१. नीरोगता, २. आस्तिकता, सत्कर्मों में रुचि, ३ उदारता, ४. सदाचार, सद्विचार, सद्विहार, सद्-व्यवहार, ५. पाप से अप्रीति, तथा ६. सबसे प्रीति !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तप से सुख-प्राप्ति

१९९. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ।।
—ऋ० ९।८३।१।।

हे (ब्रह्मणस्पते) वेदपालक प्रभो ! (ते) तेरा (पवित्रं) पवित्र तेजोमय सुख (विततं) सर्वत्र फैल रहा है, तू (प्रभुः) सबका स्वामी (गात्राणि) शरीरों में (विश्वतः सब प्रकार से (परि एषि) व्यापक है। (अतप्ततनुः) जिसने शरीर को तपस्या से नहीं तपाया, ऐसा मनुष्य (तत्) उस (आमं) सुख को, आनन्द को (न) नहीं (अश्नुते) प्राप्त करता, अपितु (शृतासः) ज्ञान-विज्ञान, तप के अनुष्ठान से परिपक्व हुए महात्मा (तत्) उस आनन्द को (वहन्तः) धारण करते हुए (सम् आशते) भली प्रकार भोगते हैं।

आनन्दमय परमात्मा रोम-रोम में व्याप रहा है। उसका दर्शन करने से अलौकिक आनन्द मिलता है। किन्तु तपस्या के बिना उसके दर्शन अशक्य हैं। जो तपस्या के द्वारा अपने शरीर तथा इन्द्रियवर्ग को वश में कर लेते हैं, वे उस आनन्द में खूब विभोर होते हैं।

स्वावलम्बन

२००. स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न संनशे ।। —य० २३।१५।।

(वाजिन्) ज्ञानिन् ! (स्वयं) अपने-आप (तन्वं) शरीर को, कार्य के फैलाव को (कल्पयस्व) समर्थ बना, तू (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ-यागादि भली प्रकार कर, तू (स्वयं) स्वयं ही (जुषस्व) उसके फल का सेवन कर। (ते महिमा) तेरी महिमा, बड़ाई (अन्येन) दूसरे के द्वारा (न संनशे) नहीं प्राप्त की जा सकती।

लोक में भी कहावत प्रचलित है 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।'

कर्म से फल

२०१. न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ।।
—अ० १२।३।४८।।

(अत्र) इस न्यायकारी भगवान् की न्याय-व्यवस्था में (न) न तो कोई (किल्बिषं) दोष-त्रुटि है और (न) न ही (आधारः) सहारा—सिफारिश (अस्ति) है और (न) न ही कोई ऐसा उपाय है कि (यत्) जिससे (मित्रैः) मित्रों के (सम्-अममानः) साथ चलकर (एति) जा सके। (नः) हमारा (एतत्) यह—कर्मों से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कमाया हुआ (अनूनं) पूरा, जिसमें न्यूनता-अधिकता कुछ भी नहीं हुई ऐसा— (पात्रं) पात्र (निहितं) सुरक्षित रखा है, (पक्तारं) पकानेवाले को (पक्वः) पकाई वस्तु (पुनः) फिर से (आ विशाति) भली प्रकार मिलती है।

इस मन्त्र में कर्म के विषय में महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रकट किये गए हैं। हम जो भी कर्म करते हैं, उनका फल हमें अवश्य मिलेगा, उसमें कोई कमी न होगी क्योंकि ईश्वरीय व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। कोई पीर-पैगम्बर, गुरु आदि हमें कर्मफल भोगने से बचा नहीं सकता; वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलती, और न ही किसी दोस्त, मित्र, बन्धु की कमाई के सहारे हम कोई पुण्यफल प्राप्त कर सकते हैं। हमारे कर्मों से भरा पात्र वैसे ही रहता है। जो कोई जो कुछ पकाता है, वही खाता है, अर्थात् जो भले-बुरे कर्म मनुष्य करता है, वही उसके आगे आते हैं।

कितने सुन्दर एवं सरल शब्दों में और कितनी अनूठी युक्ति से कर्म-सिद्धान्त के रहस्य को वेद ने सुलझाया है! वेद के सिवा और किसी धर्मग्रन्थ में इस प्रकार सरल और विशद उपदेशप्रद सिद्धान्त नहीं मिलते।

धर्म्म

२०२. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

—यजु० ३१।१६॥

(देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) यज्ञ—देवपूजा, सत्संग, दान, परोपकार, पदार्थों से यथायोग्य उपयोग, सत्यभाषण आदि के द्वारा (यज्ञं) पूजनीय परम यज्ञप्रवर्त्तक, सकलसत्कर्म-प्रसूति, जगदुत्पादक, जगद्धारक भगवान् की (अयजन्त) पूजा करते हैं, उन विद्वानों के (तानि) वे कर्म (प्रथमानि) मुख्य (धर्माणि) धर्म (आसन्) होते हैं उन कर्मों के द्वारा (महिमानः) महिमावाले होते हुए, पूज्य होते हुए (ते) उस (नाकं) दुःखाभाव को, लोक और परलोक में सुख को (ह) ही (सचन्त) सेवन करते हैं (यत्र) जिस सुखानन्द में (पूर्वे) पदज्ञ—वेदज्ञ, अथवा पुरातन (साध्याः) साधन-सम्पन्न (देवाः) परोपकारी विद्वान् (सन्ति) हैं।

ईश्वर-पूजा, परोपकार, सत्संगति, यथार्थ व्यवहार आदि ही मुख्य धर्म हैं। धर्म से लोक और परलोक में सुख मिलता है। कहा भी है—"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः" (वैं० द० १।१।२) जिससे लोक में कल्याण और परलोक में मुक्ति की प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते हैं। इसी को वेद ने 'ते ह नाकं महिमानः सचन्त' में कहा है। धर्म की गति सूक्ष्म है, इस वास्ते महाभारतकार को लिखना पड़ा— 'महाजनो येनः गतः सः पन्थाः'; वेद ने 'यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा' से इसी सिद्धान्त को कहा है। महाभारत का 'महाजन' पद संशय उत्पन्न कर सकता है, किन्तु वेद में 'साध्याः देवाः' कहा है। वेद का अर्थ परोपकारी, स्वार्थ-त्यागी, सर्वथा परहित-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कारी विद्वान् होता है। स्वार्थरहित अलोलुप, निष्काम महात्माजन जिस मार्ग से जाएँ, उसे धर्म-पथ कहते हैं।

धर्म का धारक

२०३. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्म्माणि धारयन् ॥ —ऋ० १।२२।१८॥

यतः (अदाभ्यः) अहिंस्य, किसी से भी तिरस्कृत न किया जानेवाला (गोपाः) पृथिवी आदि लोक-लोकान्तरों, वेदवाणि आदि का रक्षक (विष्णुः) सर्वव्यापक परमात्मा (त्रीणि) तीनों, तीन प्रकार के (पदा) प्राप्तव्य, ज्ञातव्य पदार्थों को (वि+चक्रमे) विशेष क्रम से, विविध क्रमों से रचता है, (अतः) इसलिए वह (धर्माणि) धर्मों का, नियमों का, पदार्थ-शक्तियों का (धारयन्) धारण करनेवाला है। इस मन्त्र में परमात्मा को सारे पदार्थों का निर्माता बताकर सब धर्म-नियमों का धारक बताया गया है। सकल पदार्थों के निर्माण तथा विविधधर्मधारण में कारण और कार्य का सम्बन्ध बताया गया है, और इसका हेतु उसके व्यापकत्व, रक्षकत्व एवं अदाभ्यत्व हैं। वेद का वर्णनप्रकार बहुत अद्भुत है। 'व्यापक होने से भगवान् सबकी रचना करने में समर्थ हैं'—इस सिद्धान्त पर आकाश दृष्टान्त से सम्भाव्यमान दोष का वारण करने, भगवान् में चेतनता का प्रतिपादन करने के लिए उसे गोपाः =रक्षक कहा गया है। जो चेतन नहीं, वह किसी की रक्षा क्या कर सकेगा? इस (गोपाः) एक पद से भगवान् के दो विशिष्ट गुणों का प्रतिपादन किया गया है। जीवों के आश्वासन के लिए भगवान् को अदाभ्य=किसी से न दबनेवाला, अविनाश्य, अतिरस्करणीय बतलाया है।

मनुष्य

२०४. वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः।
आ दैव्या व्रतानि चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥

—ऋ० १।७०।१॥

जो (अर्यः) स्वामी (अग्निः) ज्ञानगुण-सम्पन्न, संसार की उन्नति करनेवाला (सुशोकः) उत्तम प्रकाशयुक्त, परमतेजस्वी (मानुषस्य) मनुष्य-जाति में उत्पन्न हुए प्रसिद्ध श्रेष्ठ मनुष्य के (जन्म) शरीरधारण की सफलता को (आ) भली प्रकार (चिकित्वान्) जानता हुआ (विश्वानि) सब (दैव्यानि) दिव्यता-सम्पादक, उत्तमता की प्राप्ति करानेवाले (व्रता) सत्याचरण, सत्यभाषण आदि श्रेष्ठ नियमों को (आ) सब ओर से (अश्याः) प्राप्त करता है, हम सब मनुष्य (मनीषा) बुद्धि द्वारा, मनन-शक्ति के द्वारा उसकी (पूर्वीः) मुख्यता दिलानेवाली, पूर्णता प्राप्त करानेवाली वृत्तियों को (वनेम) आदरपूर्वक सेवें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा—जिस प्रकार (दैव्या व्रतानि आ चिकित्वान्) देवत्व प्राप्त करानेवाले सम्पूर्ण सत्य-व्यवहार आदि श्रेष्ठ व्रतों को भली-भाँति जाननेवाला (अग्निः) सर्वज्ञ (सुशोकः) उत्तमप्रकाशमय (अर्यः) जगदीश्वर (विश्वानि) सबको (अश्याः) प्राप्त है, उस प्रकार हम भी (मनीषा) बुद्धि से, मनन-शक्ति से (पूर्वीः)पहले से विद्यमान, मुख्यता प्राप्त करानेवाली बुद्धियों का (आ) उत्तमता से (वनेम) आदरपूर्वक सेवन करें, यही (मानुषस्य जनस्य जन्म) मनुष्यजातीय का जन्म है।

ईश्वर के सत्य नियमों के अनुकरण से वास्तविक मनुष्यता आती है। ईश्वर के दया, न्यायादि गुणों के धारण से ही जन्म की सफलता है। महाराज दयानन्द सरस्वतीजी ने इस मन्त्र को हृदय में रखकर क्या ही सुन्दर कहा है—"मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्यों से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्याय-कारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश)

दस्यु

२०४. अकर्म्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय॥ —ऋ० १०।२२।८॥

(नः) हममें से जो (अकर्मा) कर्म=सत्कर्म न करनेवाला, (अमन्तुः) लोक-परलोक को न माननेवाला, नास्तिक स्वभाववाला,(अन्यव्रतः) आर्य व्रतों से रहित, सत्य भाषण, सत्याचरणादि सुव्रतों को छोड़कर अन्य=अनार्य, अनात्म व्रतोंवाला (अमानुषः)मनुष्यों का अहित करनेवाला, मनुष्येतर स्वभाववाला क्रूर है, वह(दस्युः) दस्यु=जनता का अपक्षय, हानि करनेवाला है। हे (अमित्रहन्) अमित्रनाशक! (त्वं) तू (तस्य) उस (दासस्य) जगत् के क्षयकारी दस्यु के (वधः) घातक स्वभाव को (अभि) सर्वथा (दम्भय) दबा, नष्ट कर।

दस्यु कोई लोकोत्तर, विचित्र आकारवाले प्राणी नहीं होते, अपितु सत्कर्म-त्यागी, नास्तिक, दुराचारी, व्यभिचारी, लोकाहितकारी, परमात्म-पराङ्मुख मनुष्यों को ही दस्यु, राक्षस, अनार्य आदि कहते हैं। उनके घातक स्वभाव का नाश करना चाहिए, ताकि वे समाज के उपयोगी अंग बन सकें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राक्षस-पिशाच

२०६. आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि ॥ —अ० ८।२।१२

(अरातिं) कंजूसी को (निर्ऋतिं) पाप अथवा असत्य को (ग्राहिं) पकड़ रखनेवाले रोग को (क्रव्यादः पिशाचान्) मांसाहारी पिशाचों को और (रक्षः) राक्षसों को ऐसा (यत्) जो (दुर्भूतं) दुष्ट दुःखदायी पदार्थ है, (तत्) उस (सर्वं) सबका हम (तम इव) अन्धकार की भाँति (परः आरात्) अत्यन्त दूर (अप हन्मसि) फेंककर नाश करते हैं।

मनुष्यों को सम्पूर्ण दुर्गुणों से पृथक् रहना चाहिए। मांसाहारी राक्षस-पिशाचों की संगति से बचना चाहिए। जो संसार को दुःख देते हैं, वे राक्षस-पिशाच हैं।

सबको यज्ञ का अधिकार

२०७. विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥
—ऋ० १०।४५।६॥

(विश्वस्य) समस्त संसार का (केतुः) प्रकाशनेवाला (भुवनस्य) भुवनों के=ब्रह्माण्डस्थ सब पदार्थों के (गर्भः) भीतर वर्तमान अग्नि इस समय (जायमानः) यज्ञ द्वारा उत्पन्न होता हुआ (रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (आ) भली प्रकार, सब ओर से (अपृणात्) भर देता है, तृप्त कर देता है। वह (परायन्) दूर तक जाता हुआ (वीडुं) बलवान् (अद्रिं) मेघ को (चित्) भी (अभिनत्) छिन्न-भिन्न कर देता है (यत्) जब (पंच) पाँच=श्वेत, लाल, काले, पीले तथा धूसर अथवा चारों वर्ण तथा निषाद (जनाः) मनुष्य (अग्नि) अग्नि का (अयजन्त) यजन करते हैं।

'पंच जनाः' शब्द का अर्थ निरुक्तकार "चत्वारो वर्णा निषादपंचमः [चारों=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रवर्ण, एवं पाँचवाँ निषाद=अतिशूद्र] करते हैं। वेद पंचजनकर्तृक अग्नियाग का विधान कर रहा है। इससे स्पष्ट और क्या हो सकता है! स्त्री-शूद्रादि से यज्ञाधिकार छीननेवाले इस वेदाज्ञा का मनन करें।

बादल के छिन्न-भिन्न करने के दो अर्थ हैं—१. छिन्न-भिन्न करके वृष्टि के रूप में परिणत करना, अथवा २. वृष्टि के अयोग्य करना अर्थात् यज्ञ से अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि दोनों का धारण होता है। जब किन्हीं दो पदार्थों को परस्पर रगड़ते हैं, तो उनमें गरमी प्रतीत होती है। यह सब पदार्थों में अग्नि की सत्ता का अकाट्य प्रमाण है। यज्ञ से, सुगन्धित अग्नि से सब लोक प्रसन्न होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रातःकाल जागना

२०८. प्रातः रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥
—ऋ० १।१२५।१॥

(प्रातः) नित्य प्रातःकाल (इत्वा) उठनेवाला, निद्रा त्यागनेवाला (रत्नं) रत्न=उत्तम पदार्थ=स्वास्थ्य, धन, बुद्धि आदि (दधाति) धारण करता है, और (तं) उस व्यवहार को (चिकित्वान्) जानता हुआ (प्रतिगृह्य) ले-दे करके (निधत्ते) धारण करता है। वह (सुवीरः) उत्तम वीर, सत्प्रेरणायुक्त सज्जन पुरुष (तेन) उस प्रातः जागने आदि नियमों से (आयुः) आयु और (प्रजां) सन्तान को (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (रायः + पोषेण) धन की वृद्धि से (सचते) संयुक्त होता है।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह आलस्य-प्रमाद आदि का त्याग करके नित्य-प्रति प्रातःकाल जागे और धर्म-अर्थ का चिन्तन करे। इससे उसका शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य ठीक रहेगा, उससे सब प्रकार के सुख एवं धन-धान्य प्राप्त करता है। इस उत्तम नियम का दूसरों के प्रति भी उपदेश करते रहना चाहिए, ताकि हममें कोई आलसी एवं प्रमादी, दरिद्र एवं श्रीहीन, तेजोविहीन एवं शरीर, मन तथा आत्मा के रोगों से ग्रस्त न हो। क्योंकि ऐसे लोगों से समाज का बहुत अहित होता है।

स्त्री का यज्ञोपवीत

२०९. देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥
—ऋ० १०।१०९।४॥

(देवाः) दिव्यशक्तिसम्पन्न (पूर्वे) पूर्वनियमानुसार-रचित (सप्त ऋषयः) सात ऋषि=आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ (ये) जो (तपसे) तप=ज्ञान के लिए (निषेदुः) निरन्तर गति करते रहते हैं, वे (एतस्यां) इस उपनीत ब्राह्मणी के विषय में मानो (अवदन्त) कह रही हैं कि (ब्राह्मणस्य) वेदाध्येता की (जाया) जाया (उपनीता) यज्ञोपवीत धारण करके (भीमा) भयंकर, सबला बन जाती है और (दुर्धां) अन्य दुर्धार्यों को भी अथवा दुष्ट प्रकृतिवाले को भी (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) सुखमय अवस्था में (दधाति) धारण कर देती है।

पति सुशिक्षित हो, पत्नी अशिक्षित हो तो कलह ही रहता है। किन्तु स्त्री यदि सुशिक्षित हो तो दुष्ट-से-दुष्ट प्रकृति के पति को सुधार लेती है। सुशिक्षित स्त्री पापी के लिए अत्यन्त भयंकर होती है। उसकी विद्या-सुशिक्षा का उसकी इन्द्रियाँ भी साक्ष्य देती हैं। यज्ञोपवीतिनी स्त्री का उठना-बैठना आदि सारी क्रियाएँ अत्यन्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुव्यवस्थित तथा प्रामाणिक होती हैं।

मातृमान् पुत्र

२१०. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नः कृधि॥ —ऋ० २।४१।१६॥

हे (नदीतमे) सबसे उत्तम उपदेश करनेवाली (देवितमे) उत्तम गुण को प्राप्त करानेवाली, (सरस्वति) उत्तम सुशिक्षा देनेवाली, स्नेह करनेवाली (अम्बितमे) हमारी श्रेष्ठ मातः! आपके तत्त्वावधान के बिना हम (अप्रशस्ताः इव) निन्दित मनुष्यों की भाँति (स्मसि) हैं। हे (अम्ब) मैया! (नः) हमको (प्रशस्तिम्) स्तुति के योग, प्रशंसित (कृधि) कर।

जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जितना माता सन्तानों पर प्रेम करती और उनका हित चाहती है उतना और कोई नहीं चाहता। इसी कारण इस मन्त्र में माता को (नदीतमे सरस्वति अम्बितमे) विशेषणों से स्मरण किया है। माता बच्चों को साफ़-सुथरा रखने में कितना प्रयास करती है! बच्चे पर जितने संस्कार माता के पड़ते हैं उतने अन्य किसी के नहीं। इस वास्ते माता को विशेष सावधान होने की आवश्यकता है। माता बच्चे को जैसा बनाना चाहे बना सकती है।

देव और पितर

२११. देवाः पितरः पितरो देवाः। यो अस्मि सो अस्मि॥

—अथर्व० ६।१२३।३॥

(देवाः) विद्वान्, धार्मिक, लोकहितकारी, परोपकारी, परदुःखसंहारी ही (पितरः) पितर=पालक हैं और (पितरः) पितर ही (देवाः) देव हैं। हे देवो! हे पितरो! (यः अस्मि) मैं जो हूँ, (सः अस्मि) वही हो जाऊँ।

माता-पिता, विद्यादाता, परोपकारी सज्जन ही पितर तथा देव हैं; उनके संग से मनुष्य जो होता है, वह बन जाता है, अर्थात् मनुष्य को आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

स्वर्ग

**२१२. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥**

—अथर्व० ६।१२०।३॥

(यत्र) जिस अवस्था में (सुहार्दः) पवित्र हृदयवाले, पुनीत विचारवाले (सुकृतः) अच्छे कृत=आचारवाले सज्जन (स्वायाः) अपने (तन्वः) शरीर का (रोगं) रोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(विहाय) छोड़कर अर्थात् पूर्णतया नीरोग होकर (अंगैः अश्लोणाः) अंग-भंगरहित अर्थात् पूर्णांगावयवयुक्त शरीरवाले तथा (अह्रुताः) शरीर, आत्मा, तथा मन की कुटिलता से विरहित हुए (मदन्ति) सुखी रहते हैं (तत्र स्वर्गे) उस स्वर्ग में हम (पितरौ) माता-पिता (च) और (पुत्रान्) पुत्रों=सन्तान को (पश्येम) देखें, अर्थात् हमारे माता-पिता तथा सन्तान सदा सुखी रहें।

स्वर्ग किसी देशविशेष या लोकविशेष का नाम नहीं है, वरन् उस अवस्था को स्वर्ग कहते हैं, जिस अवस्था में मनुष्य को शारीरिक, आत्मिक, पारिवारिक आदि सब प्रकार के सुख प्राप्त हैं, जिस अवस्था में मनुष्य को कोई शारीरिक क्लेश, मानसिक पीड़ा नहीं सताती। माता-पिता तथा सन्तान का सुख प्राप्त हो, शरीर सुन्दर तथा सुडौल हो, कोई त्रुटि न हो, इसकी प्राप्ति का साधन सद्विचार तथा उत्तम सदाचार है। दूसरे शब्दों में रोग, दुःख, अंग-भंग, कुरूप शरीर आदि पापों का फल है। संक्षेप में 'सुख विशेष भोग तथा उसकी सामग्री' का नाम स्वर्ग है।

२१३. ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन।
अबंध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव॥

—अथर्व० ६।१२२।२॥

(येषां) जिनका (पित्र्यं) पितृ-ऋण (आयनेन) क्रम से, अर्थात् सन्तानतन्तु के अविच्छेदरूपी मार्ग से (दत्तं) दिया गया है, ऐसे (एके) कई सज्जन (ततं) विस्तृत अर्थात् सन्तान-सम्बन्धी (तन्तुं अनु) तन्तु के पश्चात् ही (तरन्ति) संसार को पार करते हैं। किन्तु (एके) कई (ददतः) दानी (चेत्) यदि (दातुं) देना (शिक्षान्)जानते हों, तो (अबन्धु) बन्धुरहित होकर भी (प्रयच्छन्तः) दान करते हुए (तरन्ति) तर जाते हैं। (सः) वह (स्वर्गः) स्वर्ग (एव) ही है अथवा (सः एव) वह ही (स्वर्गः) स्वर्ग है।

वेदादि शास्त्रों में मनुष्य-जीवन को चार भागों में विभक्त किया है–१. ब्रह्मचर्य, २. गृहस्थ, ३. वानप्रस्थ, तथा ४. संन्यास। साधारण मर्यादा यह है कि मनुष्य क्रम से इनका पालन करे। ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थ, फिर वानप्रस्थादि। विशेषावस्था में जब मनुष्य में पर्याप्त वैराग्य हो, इन्द्रियनिग्रह का पूर्णसामर्थ्य हो, मन-संयम की भरपूर शक्ति हो, तो वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना ही संन्यासाश्रम ग्रहण कर सकते हैं। इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध में तो क्रम-संन्यास अर्थात् सन्तान उत्पन्न करके फिर वानप्रस्थादि में प्रवेश का विधान है, उत्तरार्द्ध में दूसरे प्रकार का विधान है, किन्तु उसके लिए एक कड़ा नियम है कि वे दानी हों, अर्थात् सर्वस्व त्याग करके सदा लोकहित में तत्पर रहें। उसके विद्यादान की पवित्रता आविप्र-चाण्डाल सबको समान रूप से प्रक्षालन करनेवाली हो। सदा सद्धर्म्म का, सदाचार-सद्व्यवहार का उपदेश करता रहे। लोगों से पाखण्ड छुड़ाकर सन्मार्ग पर आचरण कराता रहे। यदि यह सामर्थ्य हो, तो यह स्वर्ग है, अन्यथा कर्तव्य-भ्रष्ट होने से नरक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिक्षा

२१४. अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्तुतिं विन्दत्यंजसीनाम् ॥

—ऋ० १०।३२।७॥

(अक्षेत्रवित्) क्षेत्र को न जाननेवाला (क्षेत्रविद्) क्षेत्र को जाननेवाले से (हि) ही (अप्राट्) पूछे तो (सः) अक्षेत्रवित् (क्षेत्रविदा) क्षेत्रज्ञ से (अनु-शिष्टः) क्रमपूर्वक सिखाया हुआ (प्र+एति) उत्तम गति को प्राप्त होता है (उत) और (अंजसीनाम्) प्रवल वेगवान् तथा महाज्ञानियों की (स्तुतिं) स्तुति को, प्रशंसा को (विन्दति) प्राप्त करता है। (एतत्) यह (अनुशासनस्य) अनुशासन=क्रमपूर्वक शिक्षा का (वै) ही (भद्रं) भला परिणाम है।

अज्ञानी ज्ञानी से जिज्ञासा करे, और ज्ञानी उसकी जिज्ञासा को समझकर उसे इस प्रकार उपदेश करे कि उसकी जिज्ञासा पूर्णरूप से शान्त हो जाए, तत्सम्बन्धी प्रत्येक आशंका का निवारण कर दे। इस प्रकार वह जिज्ञासु न केवल ज्ञानी बन जाता है,अपितु बड़े-बड़े विद्वान् भी उसकी प्रशंसा करते हैं, अथवा 'अंजसीनाम् स्तुतिं विन्दति'=व्यक्ताव्यक्त सब पदार्थों के गुण-धर्म्म का उसे ज्ञान हो जाता है, अर्थात् उससे अज्ञानादि समस्त दुर्गुण दूर हो जाते हैं, यह शिक्षा का सुन्दर परिणाम है। परमर्षि ने भी कहा है—'जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती हो और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं। सबको चाहिए कि इस प्रकार की शिक्षा का प्रसार करें।

विद्या और पदार्थों का आदिमूल

२१५. विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ —ऋ० १।२२।१९॥

हे विद्वानो ! (विष्णोः) उस सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वपूज्य भगवान् के (कर्म्माणि) सृष्टिरचन, पालन आदि विविध कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे जीव (व्रतानि) नियम-ज्ञान (पस्पशे) प्राप्त करता है, अथवा (यतः) जिस कारण सृष्टि का ज्ञान कराने के लिए परमात्मा ने (व्रतानि) नियमों को, व्रत-प्रतिपादक वेदमन्त्रों को (पस्पशे) प्रकट किया है वह परमात्मा (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (युज्यः) सदा युक्त (सखा) मित्र है।

समस्त सृष्टि-पदार्थ तथा तद्बोधक ज्ञानराशि परमात्मा से ही प्रकट होते हैं। प्रभु सृष्टि रचकर उससे उपयोग लेने के लिए ज्ञान भी प्रदान करते हैं। परमात्मा के रचित पदार्थों तथा उनमें कार्य कर रहे नियमों का वह बोधक होता है। मन्त्र का पूर्वार्द्ध बहुत महत्त्व का है, इसमें एक संकेत किया है कि सृष्टिनियम-विरुद्ध

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपदेश देनेवाले ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान की पदवी के योग्य नहीं है। इस मन्त्र का आशय परमर्षि ने इन पावन शब्दों में किया है—"सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।" परमात्मा क्यों सृष्टि-रचना आदि कार्य करता तथा ज्ञान दान करता है? इसका उत्तर है—"इन्द्रस्य युज्यः सखा" क्योंकि वह जीवात्मा का युक्त=योग्य अथवा सत्कर्मों में नियुक्त करनेवाला मित्र है।

वेद का पढ़ना-पढ़ाना

२१६. वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम॥

—अथर्व० १२।२।२८॥

हे भद्र पुरुषो! (वर्चसे) वर्चस [तेज, दीप्ति, प्रकाश, ज्ञान आदि] के लिए (वैश्वदेवीं) विश्वदेवों=सब पदार्थों, सब उत्तम गुणों से सबन्ध रखनेवाली देववाणी को (आ) सब प्रकार से (रभध्वं) वेगपूर्वक आरम्भ करो अथवा वेगपूर्वक प्राप्त करो, और (शुद्धाः) शुद्ध (भवन्तः) होते हुए (शुचयः) ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (पावकाः) दूसरों को पवित्र करनेवाले होकर (दुर-इता) दुःख प्राप्त करानेवाले (पदानि) पदों को, साधनों को, कार्यों को (अतिक्रामन्तः) अत्यन्त लाँघते हुए तुम हम(सर्ववीराः) सर्ववीर अर्थात् सर्व प्रकार के वीरोंवाले (शतं हिमाः) सौ सर्दियाँ= सौ वर्ष=पूर्णायु (मदेम) सुखी रहें।

वेद को इस मन्त्र में वैश्वदेवी=सब देवताओं का प्रतिपादन करनेवाली वाणी बताया है। दूसरे शब्दों में वेद सब विद्याओं का भण्डार है। उसकी प्राप्ति के चार उपाय हैं—पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना। वेदाध्ययन से मनुष्य स्वयं पवित्र होता है, दूसरों को पवित्र कर सकता है। सारी आयु समस्त दुर्गुणों, दुर्व्यसनों से मुक्त रहकर सब प्रकार के आनन्द भोगता है। इस वास्ते महाराज ने आदेश किया—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग

२१७. युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः।
अवातिरतमनृतानि विश्वा ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे॥

—ऋ० १।१५२।१॥

हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान की भाँति जीवनदाता गुरो! तथा उपदेशक! (युवं) तुम (पीवसा) मोटे (वस्त्राणि) वस्त्र (वसाथे) पहनते हो, (युवोः) तुम्हारी (मन्तवः) बुद्धियाँ तथा (सर्गाः) रचनाएँ (अच्छिद्रा) छिद्ररहित, दोषरहित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ह) हैं (विश्वा) सब (अनृतानि) झूठे व्यवहारों को (अव+अतिरतं) त्याग दो, और (ऋतेन) सत्य से (सचेथे) सम्बन्ध करो।

जो ज्ञानी हैं, जो जगद्धितैषी हैं, सत्योपदेशक गुरुजन हैं, वे मोटे-सादे वस्त्र पहनते हैं, उनके विचार और आचार में कोई छल-कपट नहीं होता। 'पीवसा वस्त्राणि' कदाचित् खद्दर की ओर संकेत करता है। उत्तरार्द्ध में असत्य के त्याग तथा सत्य के ग्रहण का उपदेश किया है। इसका भावार्थ महाराज ने यों किया है— "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"

२१८. दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः॥

—यजु० १९।७७

(प्रजापतिः) जगत्पति परमेश्वर ने (दृष्ट्वा) जाँच करके (सत्यानृते) सत्य और असत्य (रूपे) रूपों को (व्याकरोत्) अलग-अलग कर दिया है। (प्रजापतिः) सृष्टिरक्षक भगवान् ने (सत्ये) सत्य में (श्रद्धां) श्रद्धा को (अदधात्) रखा है, और (अनृते) झूठ में (अश्रद्धां) अश्रद्धा को।

सत्य और असत्य दोनों ही पृथक् हैं। इनमें से सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करना चाहिए।

सत्यासत्य का विचार

२१९. निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि॥

—ऋ० १०।१२४।५॥

(त्ये) कई (असुराः) असुर, शिश्नोदरपरायण (उ) भी (निर्मायाः) छलरहित होने से (अभूवन्) विजयी होते हैं, और (त्वं) तू (च) तो हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष! (मा) मुझको (कामयासे) चाहता है। हे (राजन्) सत्य से देदीप्यमान सज्जन! (ऋतेन) ऋत=सत्य से (अनृतं) अनृत=असत्य का (विविञ्चन्) विवेक करता हुआ (मम) मेरे (राष्ट्रस्य) राष्ट्र के (आधिपत्यं) आधिपत्य=स्वामित्व को (एहि) प्राप्त कर।

सत्याचरण से असुर भी विजयी होते हैं; जो 'खाओ, पिओ, करो आनन्द' के अनुयायी हैं, वे भी यदि सत्य का विचार कर कार्य करते हैं, तो सफलता लाभ करते हैं। जो हैं ही धर्मात्मा वे क्यों न सफलता प्राप्त करेंगे? सत्यासत्य का भेद जानकर जो सत्य का अनुष्ठान करते हैं वे संसार में अनुपम प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। अतः 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचारकर करने चाहिएँ।'

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रणीत

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुरुता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षेप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक-संख्या बढ़कर एक लाख तक पहुँच गई। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों, अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूंसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने महाभारत का एक विशिष्ट संस्करण तैयार किया है।

इस ग्रन्थ से असम्भव, अश्लील और अप्रासांगिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तारतम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी झाँकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

☐ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अँगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूतपुत्र था, क्या जयद्रथ को धोखे से मारा गया आदि

☐ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ६०० रुपये।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri, Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

23 दिसम्बर 1987

राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर प्रकाशित।

इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण, आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन चरित।

11 खण्डों में
मूल्य 660-00

हर राष्ट्र-भक्त के लिए संग्रहणीय

- ☐ मैकाले की दूषित शिक्षाप्रणाली के स्थान पर प्राचीन ऋषि अनुमोदित शिक्षा प्रणाली के समर्थक स्वामी **श्रद्धानन्द** शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता में शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के गुरुकुल कागडी की स्थापना की।
- ☐ अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती खोलकर खड़ा होने वाला **वीर राष्ट्र-भक्त संन्यासी श्रद्धानन्द** का एक तेजस्वी रूप था। कर्मवीर गांधी को महात्मा गांधी बनाने वाला व्यक्ति **देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- ☐ दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- ☐ 1883 से 1926 बलिदान होते समय तक **श्रद्धानन्द** का इतिहास आर्य समाज का राष्ट्र का इतिहास है।
- ☐ अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में रत रहते हुए **स्वामी श्रद्धानन्द** भारतीय एवं विदेशी नेताओं शिक्षा-शास्त्रियों और जन-मानस के हृदय-सम्राट् बन गए।

गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi